अरावली के दो वर्चस्वी सूर्य

आचार्य श्री भारमलजी – आचार्य श्री रायचंदजी

भाग-६

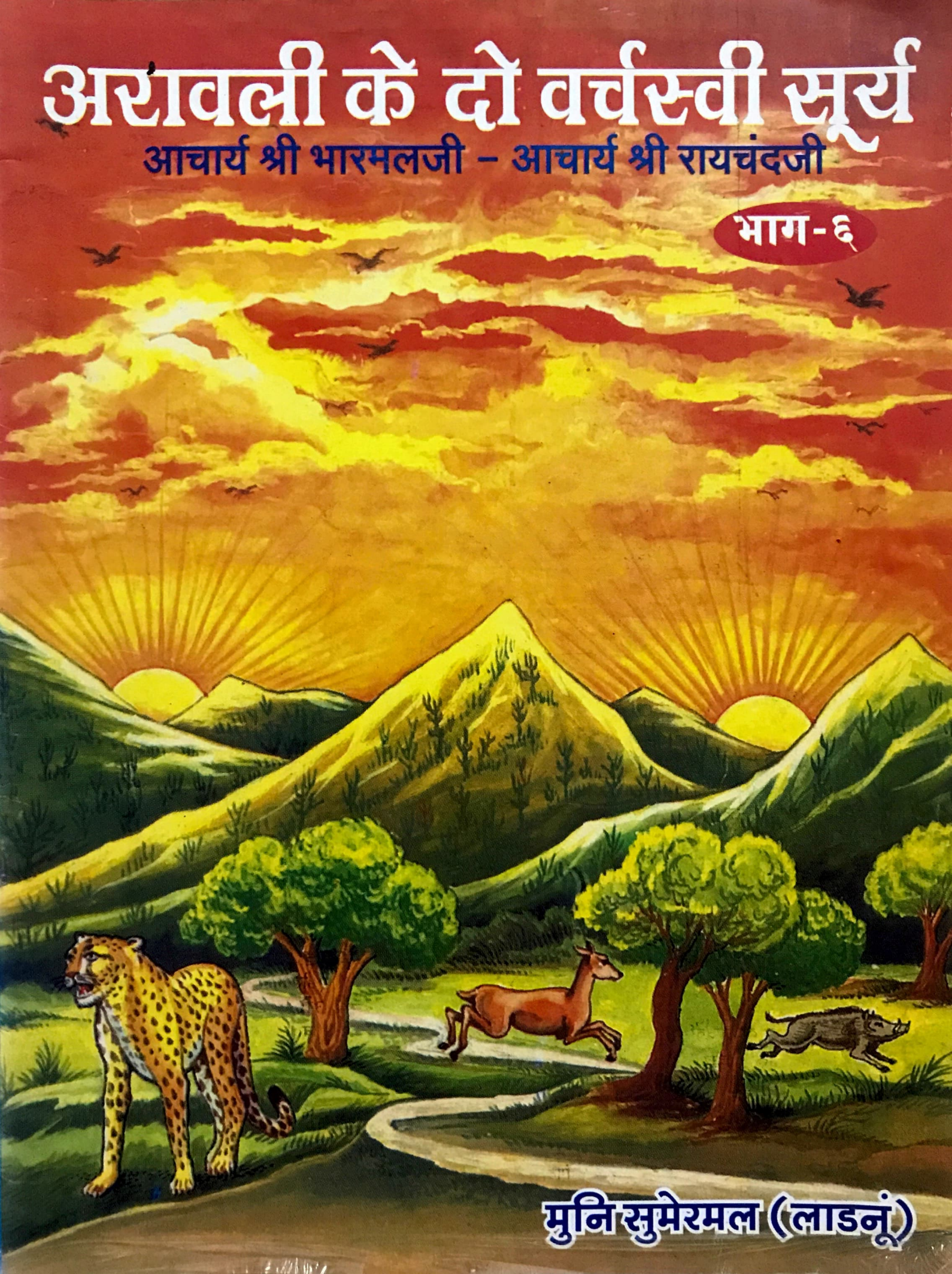

मुनि सुमेरमल (लाडनूं)

परिचय

तेरापंथ के दूसरे आचार्य श्री भारमल जी अपने गुरु आचार्य भिक्षु के सफल उत्तराधिकारी थे । प्रारंभ से ही वे स्वामी जी के प्रति सर्वात्मना समर्पित रहे । इसी समर्पण ने भारमल जी को सर्वोच्च पद पर पहुंचा दिया । केलवा-अंधेरी ओरी में सर्प द्वारा पैर में आंटे दिए जाने पर भी उस चौदह वर्षीय बाल मुनि भारमल ने गजब के साहस का परिचय दिया । शुद्ध मार्ग पर चलने के लिए अपने पिता मुनि किसनो जी को छोड़ आचार्य भिक्षु के साथ छाया की भांति रहे । तत्कालीन साधु-समुदाय की प्राप्त सुविधा को ठुकराकर अध्यात्म भाव का परिचय दिया । उन्होंने तेरापंथ शासन में स्त्री शिक्षा पर विशेष बल दिया । वे स्वाध्यायशील, सरल एवं कुशल अनुशास्ता थे।

तीसरे आचार्य श्री रायचंद जी बड़े पुण्यवान् आचार्य थे । बचपन में आचार्य भिक्षु के कर कमलों से दीक्षित हुए । आचार्य भिक्षु ने उनको होनहार एवं बुद्धिमान माना तभी उन्होंने एक बार कहा - 'रायचंद तो भारमल का भार संभालने योग्य है' । डाकुओं से घिर जाने पर भी उनमें वही निर्भीकता व अदम्य साहस था । रायचंद जी ब्रह्मचारी तथा ऋषिराय नाम से भी प्रसिद्ध थे । उनके शासन काल में साधु-साध्वियों की अपूर्व वृद्धि हुई । वे जब विहार करते, आकाश बादलों से घिर जाता । निकटवर्ती गांवों के लोग अनुमान लगा लेते-जरूर, आज ऋषिराय ने विहार किया होगा । उनका अनुमान सही निकलता । वेशभूषा की दृष्टि से तेरापंथ की अलग पहचान इनके कार्यकाल में शुरू हो गई । इनके शासनकाल में क्षेत्रों का विस्तार अभूतपूर्व हुआ ।

क्रांतिकारी आचार्य भिक्षु के पांच भागों के बाद प्रस्तुत चित्रकथा में तेरापंथ के दूसरे एवं तीसरे आचार्य के जीवन की संक्षिप्त झलक प्रदर्शित की गई है।

मुनि सुमेरमल (लाडनूं)

विघ्न हरण मंगल करण, स्वाम भिक्षु रो नाम।
गुण ओलख सुमिरण करै, सरै अचिन्त्या काम ॥

प्रकाशक
मित्र परिषद्
115, ए चित्तरंजन एवेन्यु, कोलकाता - 700 073
फोन : 22352481, 22357935

मुख्य प्रवृत्तियां
- वातानुकूल प्रेक्षाध्यान केन्द्र
- होमियोपेथी व शिशु चिकित्सा केन्द्र
- अस्थि चिकित्सा केन्द्र
- सिलाई - बुनाई प्रशिक्षण केन्द्र
- समृद्ध पुस्तकालय
- विद्यार्थियों को छात्रवृत्ति
- विशाल बर्तन भंडार
- असहायों को सहायता
- साहित्य सेवा

संपादक
मुनि उदितकुमार

संस्करण : द्वितीय
आचार्य भिक्षु निर्वाण द्विशताब्दी वर्ष

- अभिवन्दना कर्ता -
श्रीचन्द, उम्मेदसिंह, विजयसिंह मोहोनोत
(डीडवाना)
जयशुप ओफ इन्डस्ट्रीज
नं 3 एवं 5, चार्ल्स केम्पबेल रोड़
कोक्स टॉउन, बेंगलोर-560 005
फोन : 25483508 / 25483908
मोबाईल : 98452 12363 / 98450 40099, 20099

मुद्रक :- श्रीं ऑफसेट प्रिन्टर्स, बेंगलोर-53. फोन : 5699 2695 मोबाईल : 98440 06655
श्रीनिवासा प्रिन्टर्स, बेंगलोर-53. फोन : 23356888

मूल्य : रु ३५/-

राजस्थान- उदयपुर संभाग में भीलवाड़ा के समीप 'बड़ा मूहा' गांव में आचार्य श्री भारमल जी का जन्म सं. १८०४ में हुआ । वे ओसवाल जाति में लोढ़ा गोत्र के थे । पिताजी किसनो जी और माता धारणी थी ।

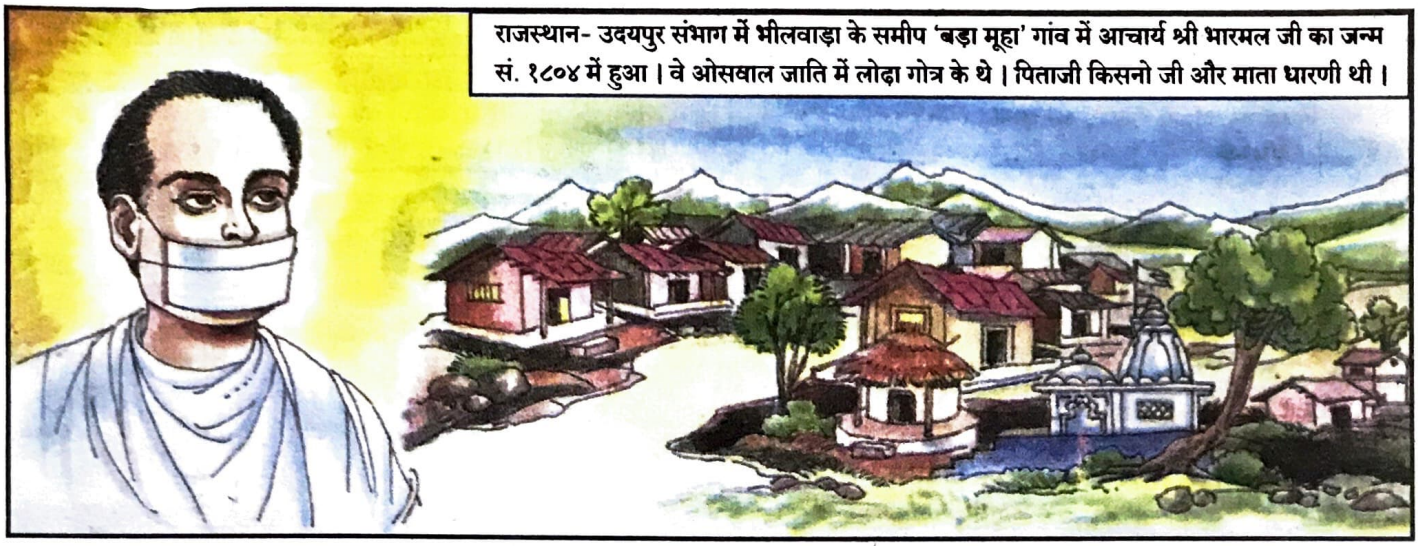

पिता किसनो जी व पुत्र भारमल जी स्वामी भीखण जी के सम्पर्क में आये और प्रतिबुद्ध हो गये ।

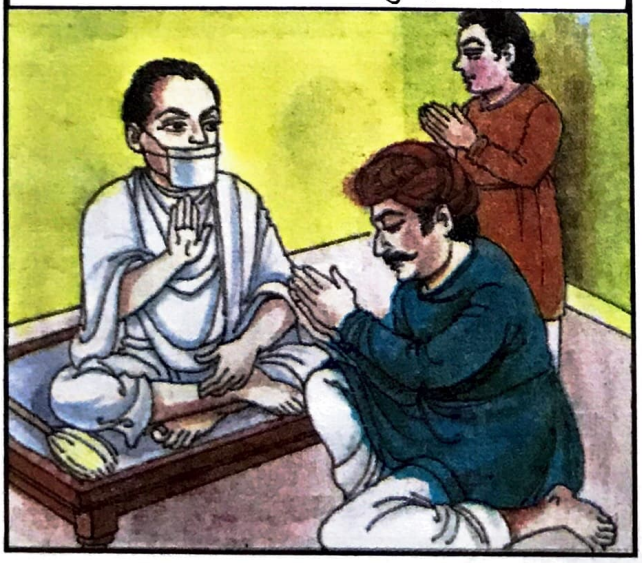

आचार्य श्री रघुनाथ जी की उपस्तिथि में स्वामी भीखण जी ने बागोर गांव के बाहर विशाल वटवृक्ष के नीचे सं. १८१३ मार्गशीर्ष कृष्णा प्रतिपदा के दिन पिता-पुत्र दोनों को दीक्षा प्रदान की ।

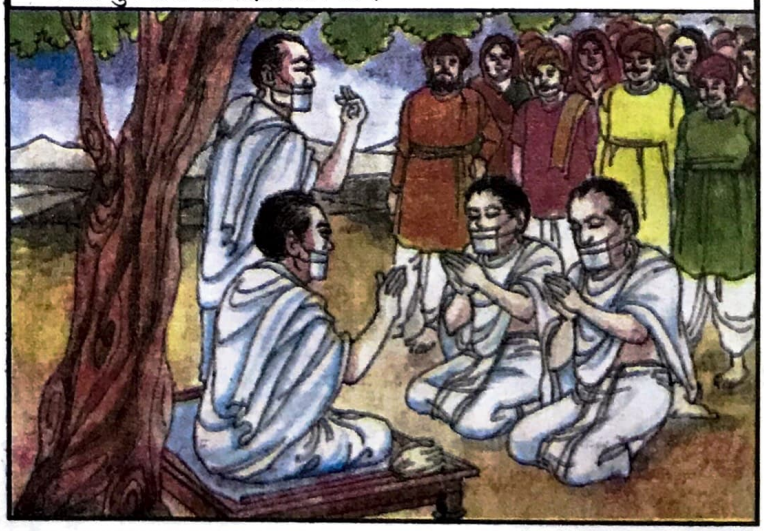

लगभग चार वर्ष तक स्थानकवासी संप्रदाय में रहे । स्वामी जी की देखरेख में , वह समय भी संस्कार-अर्जन का बन गया ।

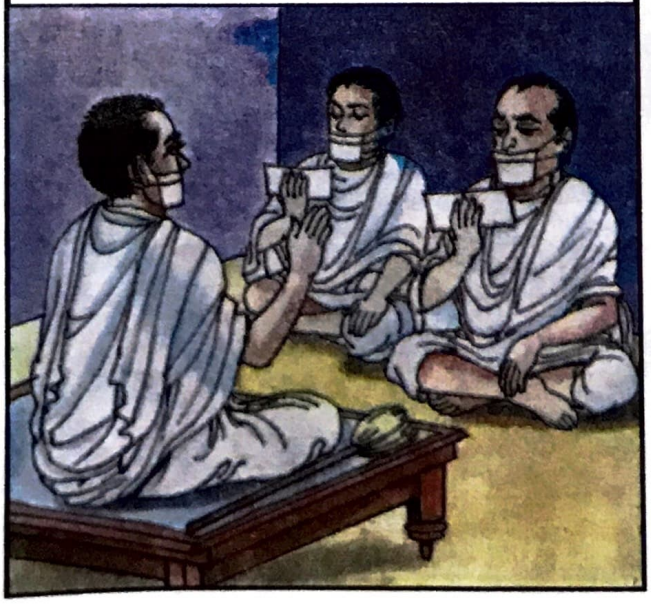

आचार्य भिक्षु ने अभिनिष्क्रमण का तय किया तो किसनो जी की प्रकृति फिट नहीं बैठ सकी । इस कारण स्वामी जी ने बाल मुनि भारमल जी से कहा -

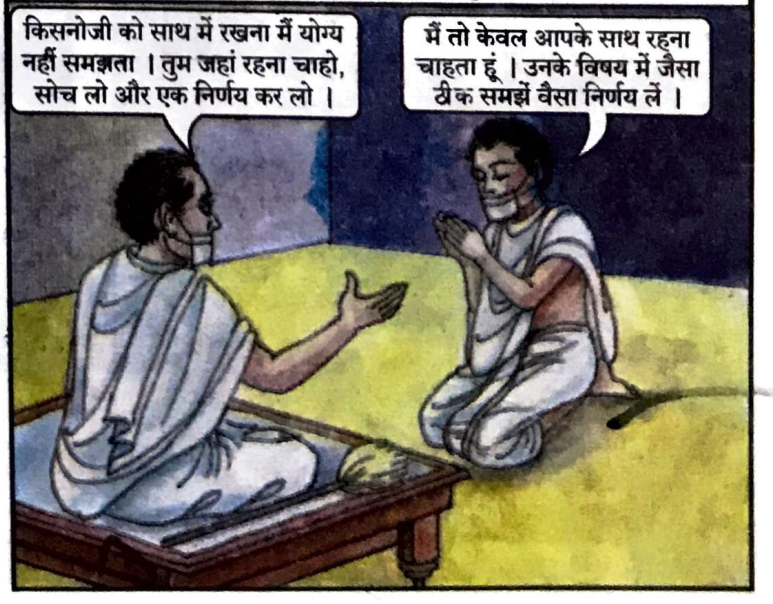

तब आचार्य भिक्षु ने किसनो जी को बुलाया और कहा-

हम शुद्ध मार्ग स्वीकार करने हेतु कटिबद्ध हुए हैं। इसमें विरोधी जनों के द्वारा कदम-कदम पर बाधाएं उत्पन्न की जाएंगी। ऐसी स्थिति में समत्व रखना आवश्क होगा। तुम्हारी जो प्रकृति है, वह बाधक है; इसलिये तुम्हें साथ रख पाने में असमर्थ हूं।

स्वामीजी की साफ-साफ बात से स्वभाव के अनुरुप किसनो जी कुपित होकर बोले-

आप स्वार्थी हैं, मुझे मूर्ख बनाना चाहते हैं; पर मैं इतना मूर्ख नहीं जो अपने पुत्र को आपके पास छोड़ दूं और बुढ़ापे में बेसहारा होकर फिरुं। मुझे अपने साथ नहीं रखते तो मैं भारमल को यहाँ नहीं छोड़ूंगा, उसे साथ ले जाऊंगा।

तुम इतने क्रोधित क्यों हो रहे हो ? मैं तुम्हारे पुत्र को फुसलाकर या जबरदस्ती नहीं रखना चाहता। मैं उसे साधना के योग्य मानता हूं। उसके साथ रहने से मुझे प्रसन्नता होगी। इसके बावजूद तुम उसे ले जाना चाहो तो मैं बाधक नहीं बनूंगा।

स्वामी जी के धैर्यपूर्ण एवं न्यायोचित कथन से किसनो जी और भी कुपित हो गये। वे उठे और अपने तथा मुनि भारमल जी के वस्त्र,पात्र आदि इकट्ठे कर बोले-

चल भारमल ! हम इनके साथ नहीं रहेंगे।

मुनि भारमल जी ने इसमें कोई रस नहीं लिया, तो डांटते हुए कहा-

चलता है कि नहीं ? तुझे मेरे साथ चलना ही होगा, मैं तम्हें यहां कतई नहीं छोड़ूंगा।

फिर भी मुनि भारमल जी नहीं उठे तो किसनो जी ने उनका हाथ पकड़ा और एक तरह से घसीटते हुए से उन्हें अन्यत्र ले जाकर ठहर गये।

मुनि भारमल जी ने साधना मार्ग और पिता में से साधना मार्ग को चुना । पिता का हृदय परिवर्तन करने के लिये अहिंसा के प्रयोग का निश्चय किया और कहा-

आपके द्वारा लाये हुए आहार-पानी का यावज्जीवन प्रत्याख्यान करता हूं ।

जब भूख लगेगी तो अपने आप खा लेगा, अभी बात को बिना मतलब क्यों खींचें ?

किसनो जी का यह अनुमान गलत निकला । दो दिन बीत गये । तीसरे दिन प्रातः उन्होंने सब प्रकार से समझाने की चेष्टा की ।

देख,बड़ों का विनय करना चाहिये, कहना मान, भोजन कर ले ।

ले पारणा कर ले, फिर हम दोनों स्वामी जी के दर्शन करने जायेंगे ।

अच्छा, मेरे हाथ से नहीं करना चाहता है तो तू स्वयं आहार,पानी ले आ और कर ले ।

मुनि भारमल जी पर किसनो जी का कोई प्रभाव नहीं पड़ा । आखिरकार अढाई दिन के बाद चौविहार तप के बाद उन्हें स्वामी जी के पास लाए और बोले-

मेरे साथ जाने के बाद से इसने आहार-पानी का त्याग कर दिया है । आज तीसरा दिन है । इसका मन आपके साथ ही रहने का है । अब आप इसे अपने साथ रखिए और पारणा करवाइए ।

मुनि भारमल जी ने स्वामी जी को नमस्कार किया ।

स्वामी जी ने मुनि भारमल जी को पारणा करवाया और किसनो जी को आचार्य श्री जयमल जी के पास सौंप कर उन्हें निश्चिन्त कर दिया ।

स्वामी जी अभिनिष्क्रमण के बाद प्रथम चातुर्मास करने केलवा पधारे तब मुनि भारमल जी साथ थे । प्रचंड विरोध के कारण उनको गांव में स्थान न देकर बाहर जैन मंदिर दिया । यह आम धारणा थी कि यहां रात्रि वास करने वाला जीवित नहीं बचता । उस मंदिर की अंधेरी ओरी में सभी ठहरे ।

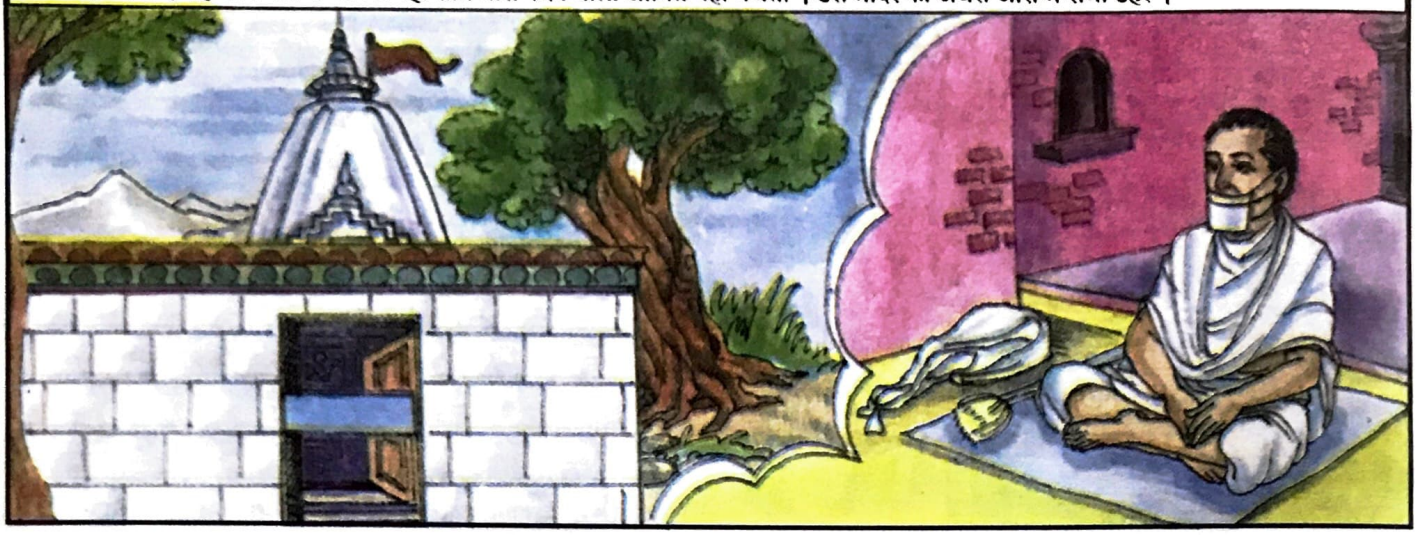

दिन भर ध्यान, स्वाध्याय आदि में बीता । सायं प्रतिकमण करने के बाद जब मुनि भारमल जी परिष्ठापन (लघु शंका निवृत्ति) हेतु बाहर गये तो एक सर्प उनके पैरों में लिपट गया । वे वहीं खड़े हो गये । कुछ क्षण बीते, स्वामी जी ने भीतर से आवाज दी-

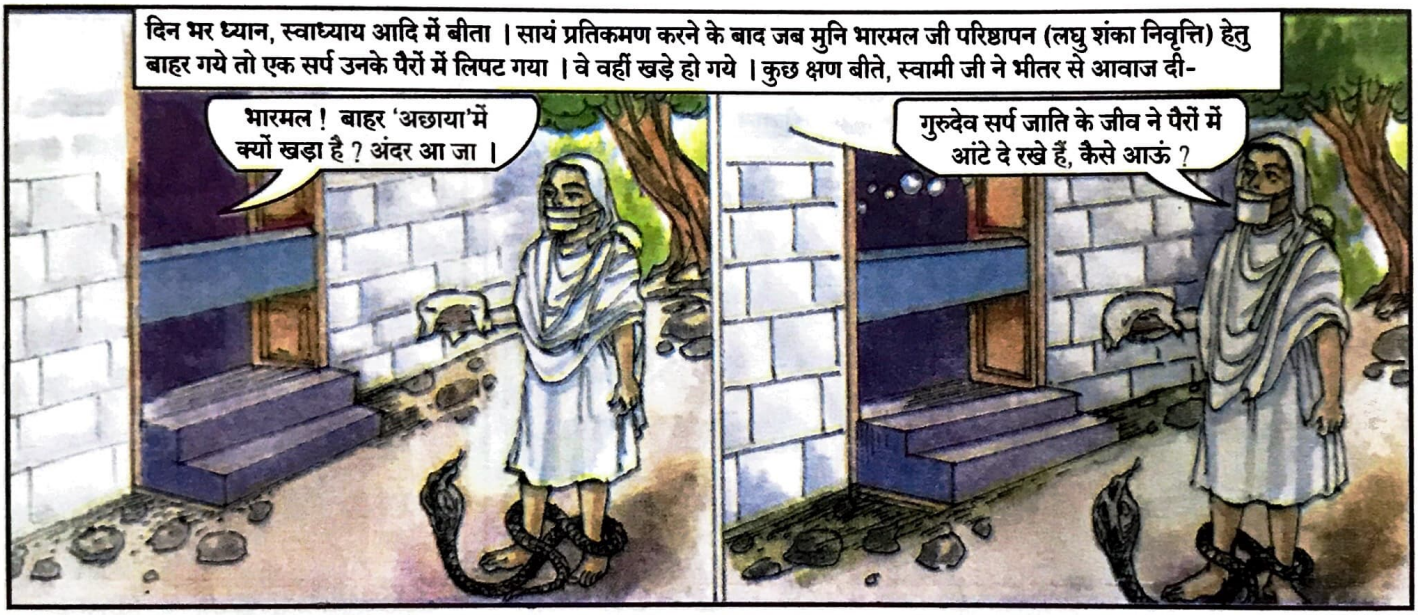

स्वामी जी ने स्थिति को गंभीरता से भांपा और तत्काल बाहर आये, नमस्कार महामंत्र का उच्चारण किया व बोले-

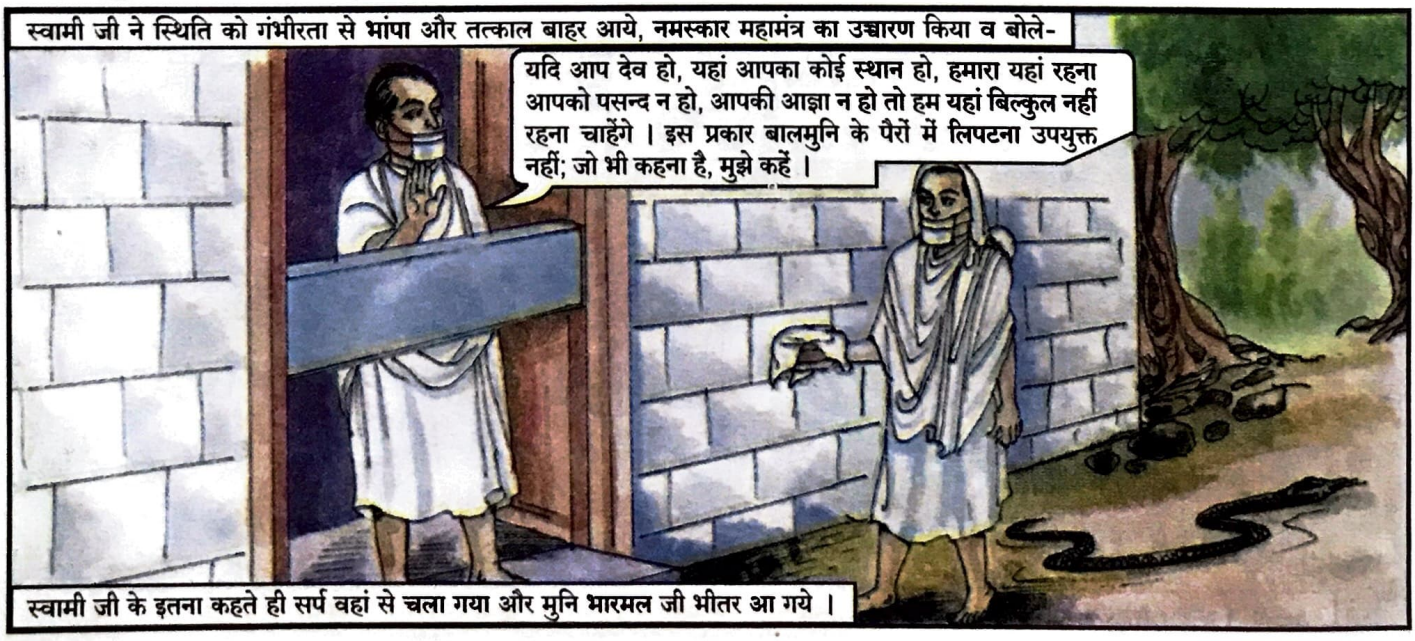

स्वामी जी के इतना कहते ही सर्प वहां से चला गया और मुनि भारमल जी भीतर आ गये ।

मुनि भारमल जी अंदर आये और मानो कुछ हुआ ही नहीं इस तरह सो गए ।

स्वामीजी ने लोगों के भय को सही समझा और धर्म-जागरण करते हुए रात बिताने का तय किया । मध्य रात्रि में यक्ष देव प्रकट हुआ ।

महाराज ! मैं मनुष्य नहीं हूं

यहां दिन में भी कोई मनुष्य नहीं आता, फिर रात्रि में वह भी मध्य रात्रि में कौन आयेगा ?

आप सानंद यहां रहें, आगे कोई उपसर्ग नही होगा । केवल इतना ध्यान रखें कि प्रातःसर्प द्वारा खींची गई लकीर के इस ओर परिष्ठापन न करें तथा पूजा गृह के दोनों और बनी चौकियों पर आपके सिवाय कोई न बैठे ।

स्वामीजी ने दोनों बातें स्वीकार कर ली, देवता अन्तर्धान हो गया । और इसी घटना के साथ लोगों का द्वेष भाव क्षीण होता गया, आस्था भाव बढ़ता गया, फलतः केलवा तेरापंथ का प्रथम क्षेत्र बन गया । लोगों का आवागमन बढ़ने लगा ।

इस अनुकूलता के पीछे स्वामीजी की सूझ बूझ एवं मुनि भारमल जी की निर्भीकता सहायक रही ।

आषाढ़ी पूर्णिमा सं १८१७, केलवा की अंधेरी औरी में स्वामीजी ने मुनि भारमल जी सहित सभी साधुओं ने भाव संयम स्वीकार किया । और इसी के साथ तेरापंथ की विधिवत् स्थापना हो गई ।

जब मुनि भारमल जी बालक थे, तब एक दिन आचार्य भिक्षु ने कहा -

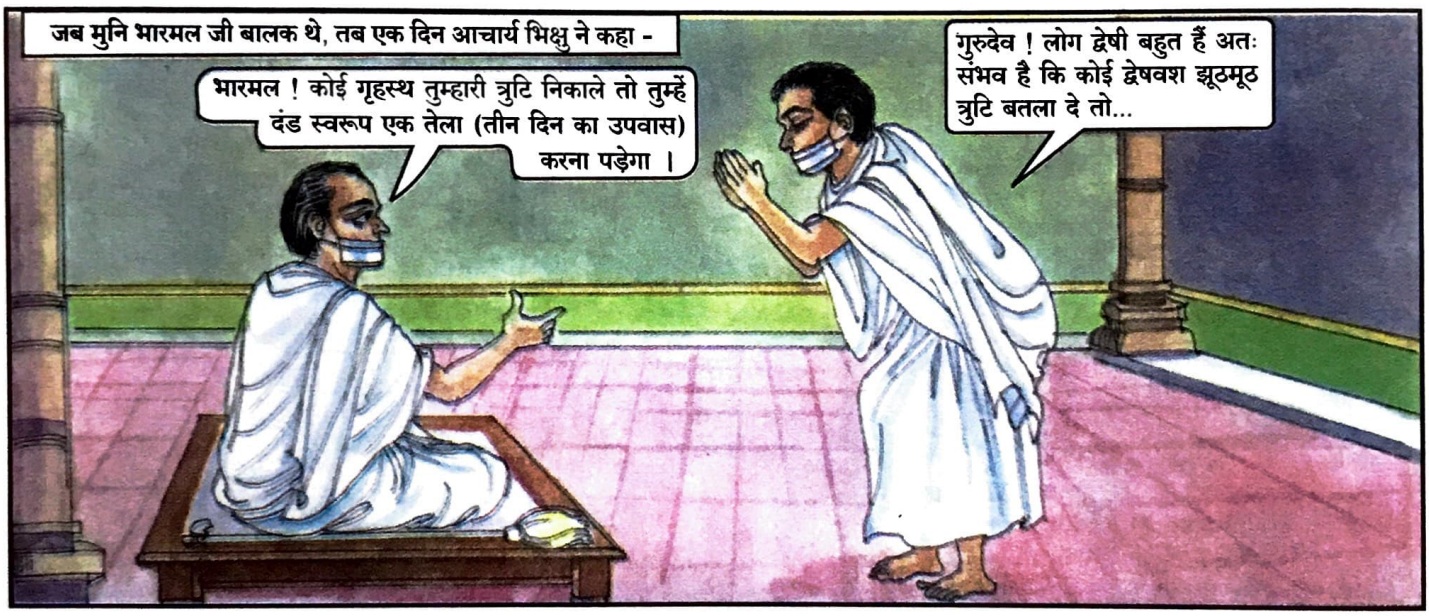

बिना किसी तर्क-वितर्क के मुनि भारमल जी ने गुरूदेव की आज्ञा को शिरोधार्य किया । इस बात के लिए जीवन भर में कभी उन्हें तेला नहीं करना पड़ा ।

भारमल ! तुम उत्तराध्ययन सूत्र का स्वाध्याय खड़े-खड़े किया करो ।

गुरूदेव ! कभी नींद के कारण नीचे गिर जाऊं तो ...

दिवार को पूंज कर खड़े हो जाया करो जिससे थकान भी न आये और गिरने का भय भी नहीं रहे ।

इस तरह उन्होंने अनेक बार उत्तराध्ययन सूत्र का स्वाध्याय यों खड़े रहकर किया । ऐसे थे वे विनीत एवं जागरुक महामुनि ।

भारमल जी आचार्य भिक्षु के आदर्श शिष्य थे । स्वामीजी के हर कार्य में अनन्य सहयोगी थे । उनके निर्दिष्ट कार्य को प्राणपन से पूरा करते थे ।

चैत्र शुक्ला नवमी १८१७ को बगड़ी में स्वामीजी ने अभिनिष्क्रमण किया उस समय वे उनके सहगामी थे ।

स्वामीजी से शास्त्रों का ज्ञान प्राप्त किया

भारमल जी कुशल लिपिकार थे । इधर स्वामीजी रचना पूरी करते उधर दो-चार दिनों के अंतर से उनकी प्रतिलिपि कर लेते । कहा जाता है कि उन्होंने पांच लाख पद्य प्रमाण ग्रंथों की प्रतिलिपि की ।

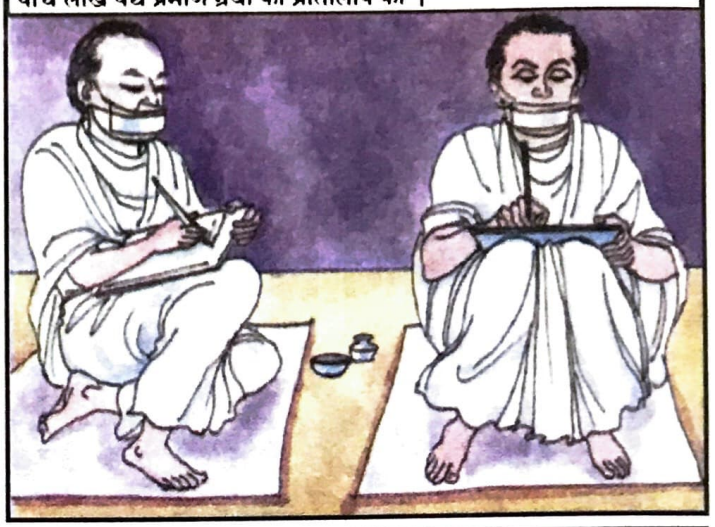

भाव-सयंम स्वीकार करने के बाद प्रारंभिक वर्षो में आहार, पानी एवं आवास जैसी मूलभूत आवश्यकताओं से जूझना पड़ा । उस समय मुनि भारमल जी स्वामीजी व अन्य संतों के साथ रात्रि प्रवास गांव में करते और दिन में गांव के बाहर नदी की तप्त धूलि पर अतापना लेते ।

भारमल जी स्वामीजी के साथ शुरू से ही समर्पित भाव से रहे । छाया की तरह उनके साथ रहे ।

मुनि भारमल जी स्वामीजी के परम भक्त, सम्पर्पित एवं आदर्श शिष्य थे । स्वामीजी ने इन्हें योग्यतम समझ सं १८३२ मार्गशीर्ष कृष्णा सप्तमी को बींठोड़ा गांव में अपना उत्तराधिकारी घोषित किया और प्रतीक रूप 'पछेवड़ी' ओढ़ाई । नियुक्ति पत्र में ही स्वमीजी ने संघ -व्यवस्था के लिए कुछ मर्यादाओं का निर्माण किया जो संघ की प्राण हैं ।

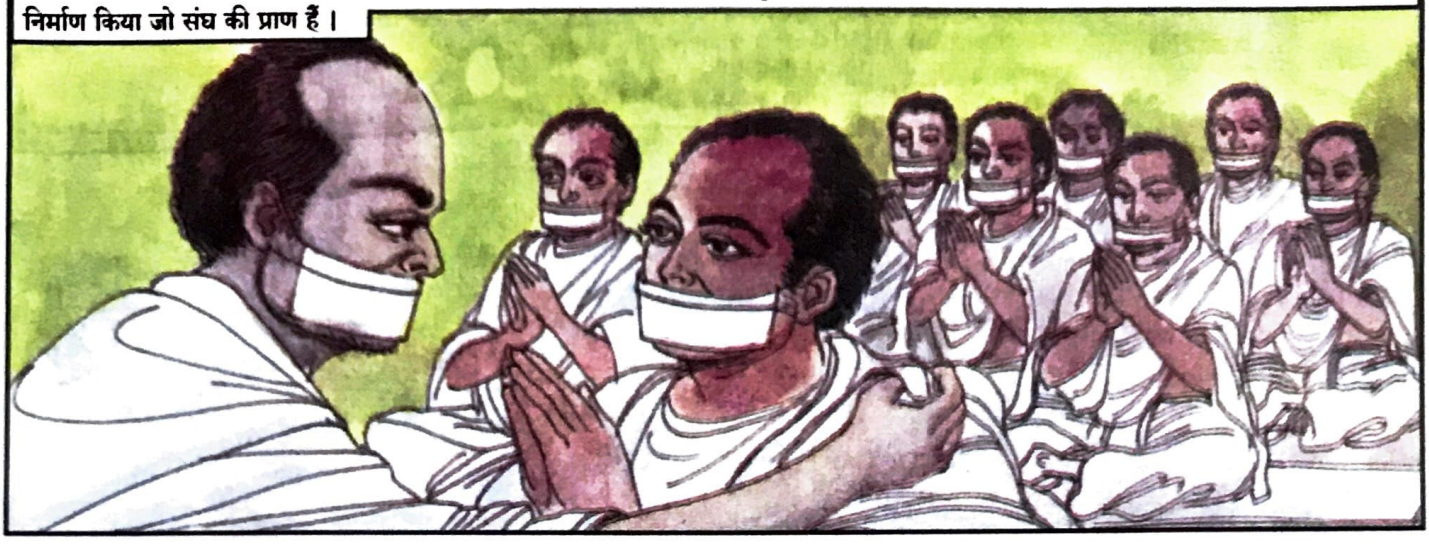

भारमल जी ने स्वामीजी का विश्वास कितना अर्जित किया वह उनके उन शब्दों से जाना जा सकता है जो उन्होंने अंतिम समय में कहे -

स्वामीजी ने अंतिम समय में संतों को मार्मिक शिक्षा दी । उन्होंने कहा -

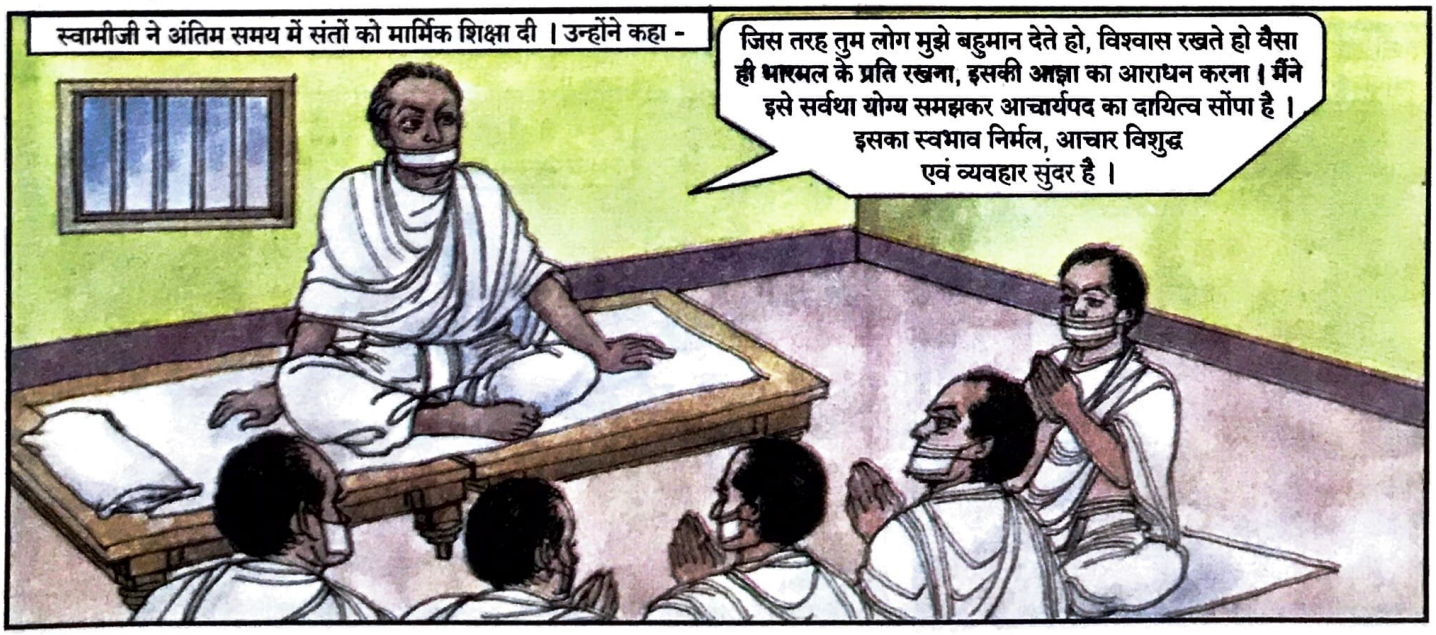

स्वामी जी के स्वर्गवास के बाद भाद्रपद शुक्ला १३, सं. १८६० को विधिवत् आचार्य बनने के पश्चात् आचार्य भारमल जी धर्म प्रचारार्थ घूमते रहे । सं. १८७० चातुर्मास माधोपुर में किया । वहां की एक धनी महिला गूजरी बाई उनके पास आई और बोली-

मेवाड़ के महाराणा भीमसिंह जी ने रूष्ट होकर आगरिया के ठाकुर को उनके पैतृक स्थान से हटाकर छोटे स्थान पर भेज दिया, जिससे वे उदास रहने लगे । उन्हीं दिनों आचार्य भारमल जी का पधारना हुआ । ठाकुर ने उनका प्रवचन सुना, पर उनके चेहरे पर उदासीनता स्पष्ट दीख रही थी । आचार्य श्री के पूछने पर पहले तो सकुचाये, पर बाद में स्पष्टता से कारण बता दिया ।

इसमें उदासी की क्या बात है ! पुण्योदय होने पर गई वस्तु भी पुनः मिल जाती है ।

बस, मेरा तो पुण्योदय ही गया, अब आगरिया पुनः प्राप्त होने में कोई देर नहीं लगेगी ।

यह आचार्य श्री की वाणी का ही चमत्कार कहना चाहिये कि चंद दिनों में ठाकुर साहब को आगरिया वापस मिल गया ।

आचार्य श्री छोटे बालक व बालिकाओं को धार्मिक ज्ञान सिखाने में काफी रूचि लिया करते थे । उसमें भी बालिकाओं को इस कार्य में अधिक महत्व देते थे । एक बार सांजनगर के एक व्यक्ति ने पूछ ही लिया-

धार्मिक-ज्ञान सिखाने में आप बालिकाओं को प्राथमिकता क्यों देते हैं ?

बालक के ज्ञान का फैलाव अपने घर तक रहता है जबकि बालिका बड़ी होने पर ससुराल जाती है । ये अच्छी ज्ञाता बनकर पीहर व ससुराल में अनेकों को समझा सकती है। बालिका को पढ़ाने का अर्थ है अनेक परिवारों में धार्मिक-संस्कारों का वपन एवं विस्तार ।

आचार्य श्री स्वभाव से मृदु एवं सरल थे, पर अनुशासन हीनता को कतई पसन्द नहीं करते । आमेट के दो श्रावक शंकाशील हो गये । धीरे-धीरे वे निंदक व कट्टर विरोधी हो गये । उनके संपर्क में आकर लोग शनैः शनैः शंकाशील बनने लगे । उनको पुनः आस्थाशील बनाने का प्रयास निष्फल हो जाने पर आचार्य श्री ने मुनि श्री हेमराज जी से विचार-विमर्श किया -

अन्य लोगों को शंकाशील बनने से बचाना है तो ऐसे शंकाशील श्रावकों को निष्कासित करना होगा ।

सुधारने के सारे प्रयत्न असफल हो जाने पर यही आखिरी उपाय है क्योंकि दुमना चाकर दुश्मन से भी अधिक खतरनाक होता है ।

सं१८७७ को उन दोनों श्रावकों को संघ से पृथक् घोषित कर दिया, जिससे अन्य लोग शंकाशील होने से बच गये ।

एक बार मुनि मोजीराम जी अजानकारी में आचार्य श्री के निर्णय के विपरीत लावा सरदारगढ़ में कई दिन रूक गए । इससे आचार्य श्री अप्रसन्न हो गये । उनके आने से पूर्व ही सब संतों को आदेश दिया -

कोई भी साधु उनकी अगवानी न करे, न ही सम्मान दे और न ही वंदन करे जब तक वहां ठहरने के कारण की खोजबीन न कर ली जाए ।

'तहत्', गुरूदेव ।

मुनि मोजीराम जी आए, किसी साधु ने उठकर न तो वंदना की, न ही कंधों पर से बोझ उतारा ...

गुरू चरणों में झुके तो सिर पर वात्सल्य रूप हाथ भी नहीं आया ।

लगता है, मुझसे कोई भूल हो गई है।

गुरूदेव ! आपकी अकृपा क्यों ?

निषेधाज्ञा जारी होने के बाद तुम लावा सरदारगढ़ में कैसे रहे ?

गुरूदेव ! मुझे इसकी जानकारी नहीं थी।

आचार्य श्री ने इस प्रकार पूर्ण विश्वास होने के बाद सबको परस्पर वंदन आदि की आज्ञा दी और उनके सिर पर हाथ रखा।

स्वामी जी के बाद बीस वर्षों के अंतराल से आचार्य श्री जयपुर पधारे। उसके बाद तेरापंथ के लिए जयपुर व्यवस्थित विहार क्षेत्र बन गया। उस प्रवास में जयाचार्य, उनके दो बड़े भाई सरूपचंद जी व भीम जी, माता कल्लू जी आदि की दीक्षाएं संपन्न हुई।

सं. १८७६ के ग्रीष्मकाल में आचार्य श्री उदयपुर पधारे । वहां व्याख्यान व धर्मचर्चा में भाई-बहनों की अच्छी उपस्थिति होने लगी ।

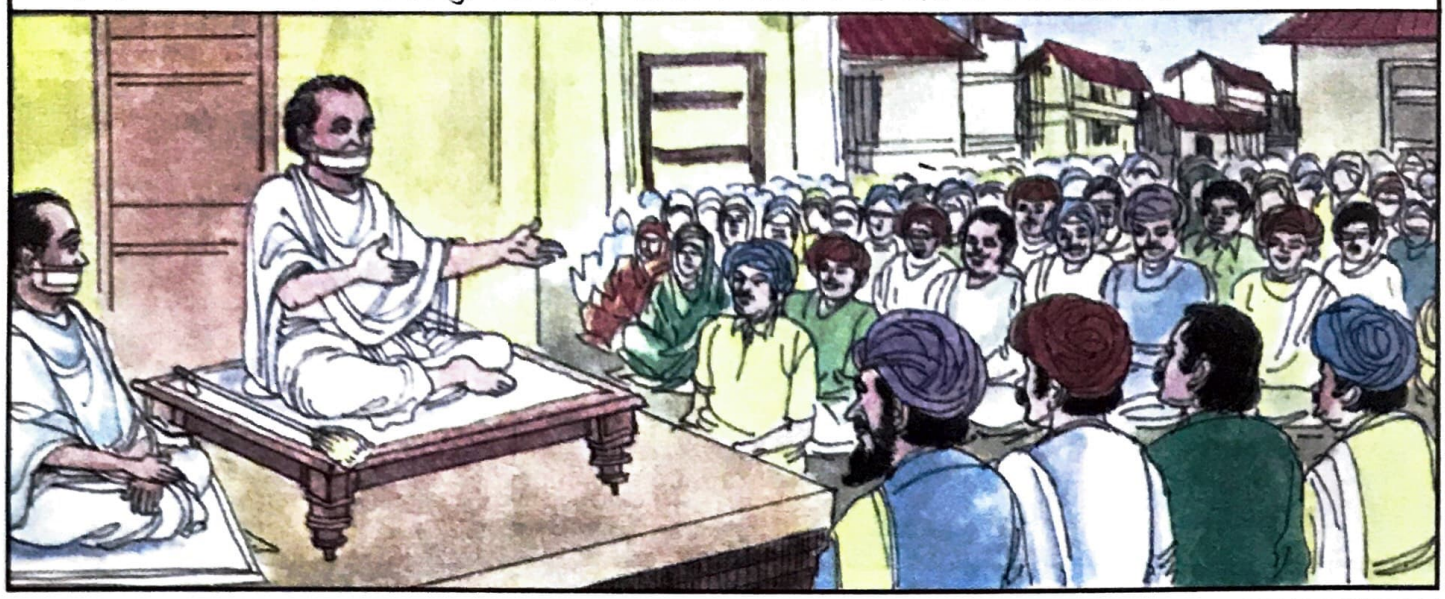

विरोधी लोगों को यह सब असह्य लगा । दबाव एवं निषेध के बाबजूद लोगों के प्रवाह को रोका नहीं जा सका । अंततः महाराणा भीमसिंह जी से अपने नजदीकी संपर्कों का लाभ उठाने का प्रयास चालू किया -

निकट रहने वाले विश्वासी व्यक्तियों द्वारा कही जाने वाली बातों से महाराणा प्रभावित हो गये तो विरोधियों ने अगला अस्त्र फेंका-

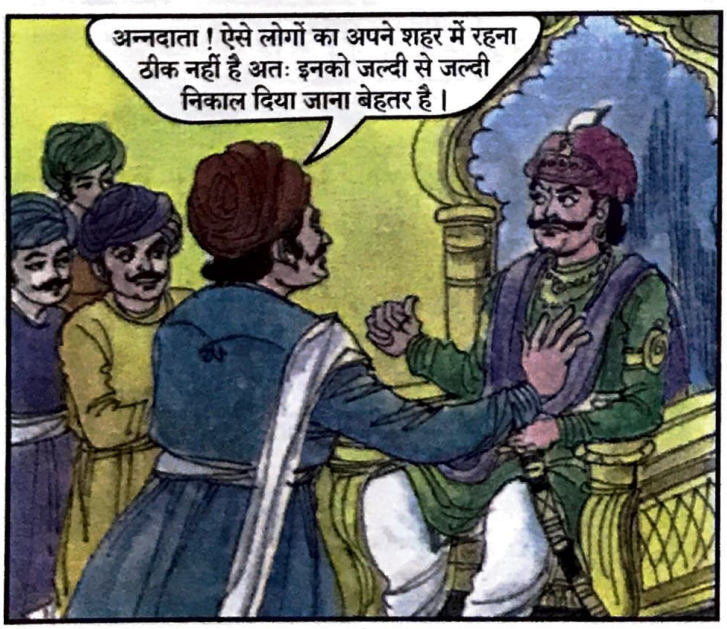

आचार्य श्री समेत सभी साधुओं को नगर छोड़ने की आज्ञा प्रसारित करने के लिए महाराणा ने हरकारे को बुलाया और भेजा ।

महाराज ! आपको शहर में रहने की महाराणा की आज्ञा नहीं है ।

भोजन लाया हुआ है, इसलिए भोजन करने के बाद जाएं या पहले ?

महाराणा ने तुरंत जाने का नहीं कहा है, आप भोजन करके भी जा सकते हैं ।

आहार-पानी करने के पश्चात् सभी संतो के साथ आचार्य श्री ने शहर से विहार कर दिया । विरोधी लोगों के प्रसन्नता का पार नहीं था । अब वे उन्हें मेवाड़ से निकालने की योजना में व्यस्त हो गये ।

आचार्य श्री राजनगर पधार गए । शहर से निकाले जाने के बाद अब मेवाड़ से निकलवा देने की योजना संबंधी बातें सर्वत्र फैल गईं । इससे चिंतित एवं उत्तेजित मेवाड़ी श्रावक राजनगर में एकत्रित हुए । सबने मिलकर यह निर्णय लिया -

यदि आचार्य भारमल जी को मेवाड़ से चले जाने की आज्ञा आ जाए तो हम सबको उनके साथ मेवाड़ छोड़ देना चाहिये ।

श्रावकों का निर्णय बलिदानपूर्ण, दृढ़ एवं साहसिक था । इस साहस एवं धैर्य से संख्या में स्वल्प होते हुए भी वे कभी परास्त नहीं हुए ।

उन्हीं दिनों महाराणा के जंवाई एवं राजकुमार का आकस्मिक निधन होने से वे चिंताग्रस्त रहने लगे । नगर में महामारी फैलने से सैंकड़ों लोग मारे गये । उसी समय श्रावक शोभ जी के संपर्क से तेरापंथी बने ड्योढी (अंतःपुर) के कार्याधिकारी श्री केसर जी भंडारी जो अब तक गुप्त श्रावक ही थे, अब प्रकट में आने का निश्चय कर महाराणा से मिले और बोले -

भंडारी जी के तर्कपूर्ण उत्तर से भ्रांति का निवारण हुआ तब महाराणा ने कहा -

महाराणा ने अपने हाथ से आमंत्रण पत्र लिखकर 'हरकारे' के साथ राजनगर भेज दिया । भंडारी जी द्वारा निर्दिष्ट व्यक्तियों को हरकारा पत्र देने लगा तो वे उसे टरकाने लगे । आखिर परेशान होकर हरकारा बोला -

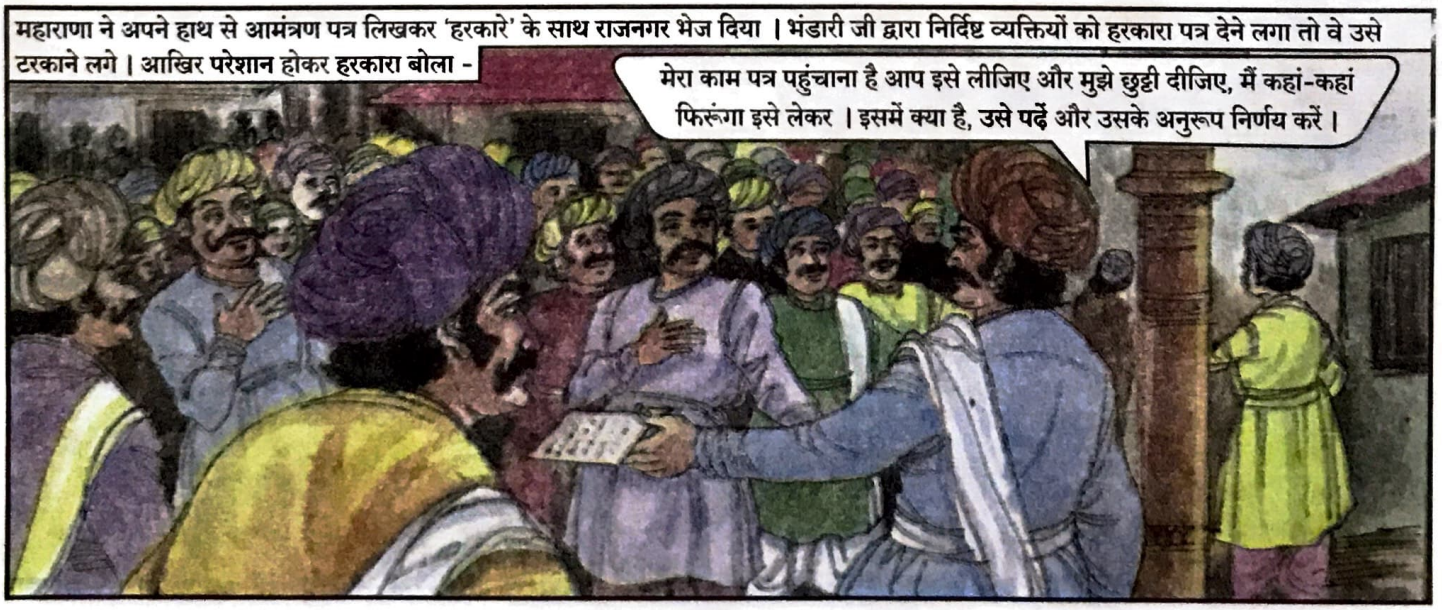

अज्ञात आशंका में पत्र को खोला । उसे पढ़ा तो सभी हर्षोत्फुल्ल हो नाच उठे ।

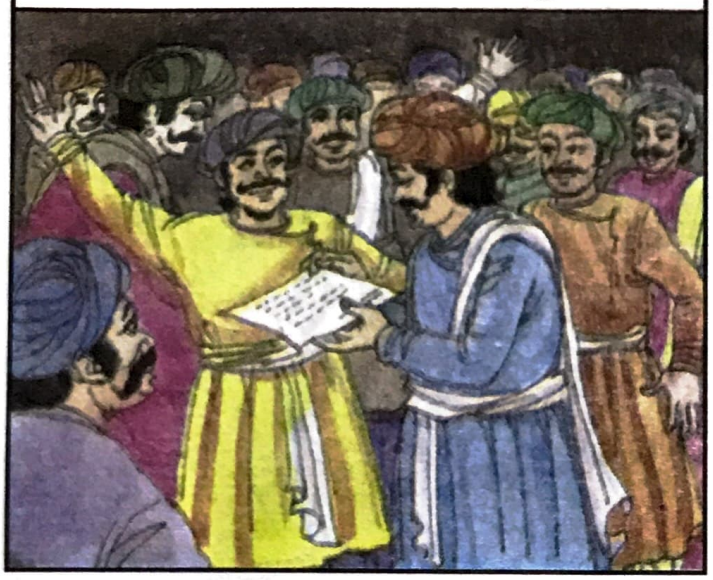

पत्र आचार्य श्री को निवेदित कर प्रतिक्रिया जाननी चाही तथा महाराणा की प्रार्थना पर ध्यान देने का आग्रह करने पर आचार्य श्री ने कहा -

उस समय महाराणा की प्रार्थना स्वीकृत नहीं हो सकी ।

सं १८७६ का चातुर्मास संपन्न कर आचार्यश्री जब कांकरोली पहुंचे तब महाराणा का उदयपुर पधारने का दूसरा पत्र आया । पत्र पढ़ने के बाद सबने निवेदन किया -

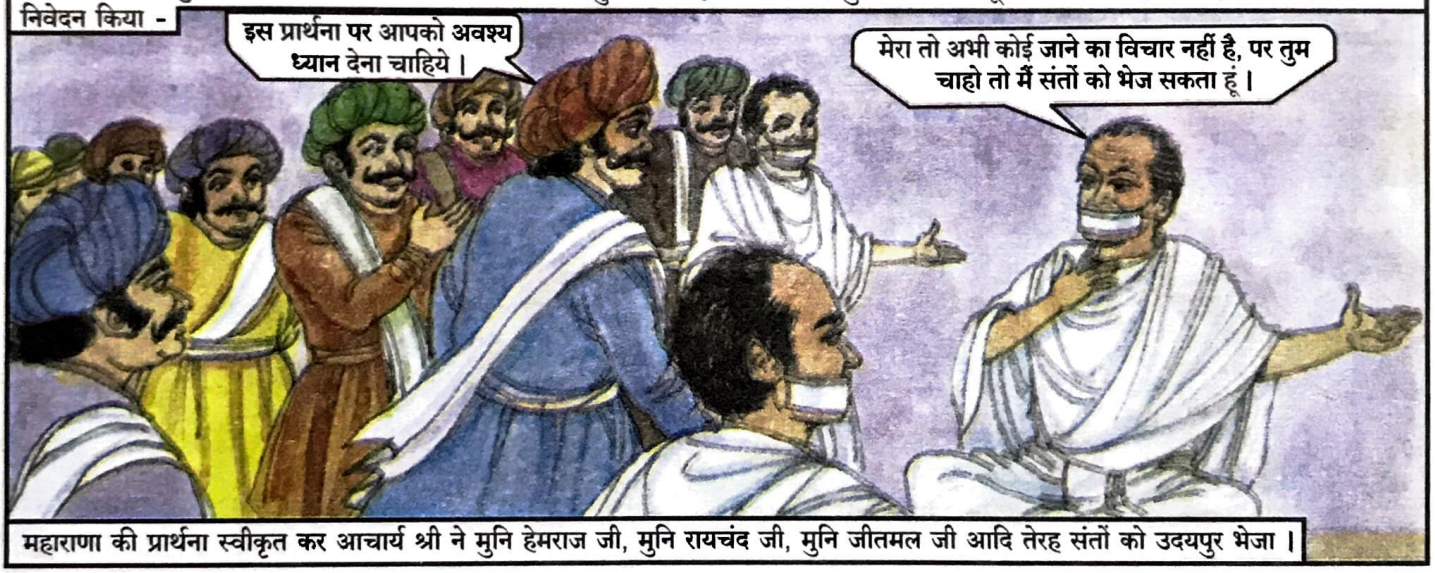

महाराणा की प्रार्थना स्वीकृत कर आचार्य श्री ने मुनि हेमराज जी, मुनि रायचंद जी, मुनि जीतमल जी आदि तेरह संतों को उदयपुर भेजा ।

संतों के एक मास के प्रवास में स्वयं महाराणा ग्यारह बार संतों के पास आये, दर्शन एवं सत्संग का लाभ लिया ।

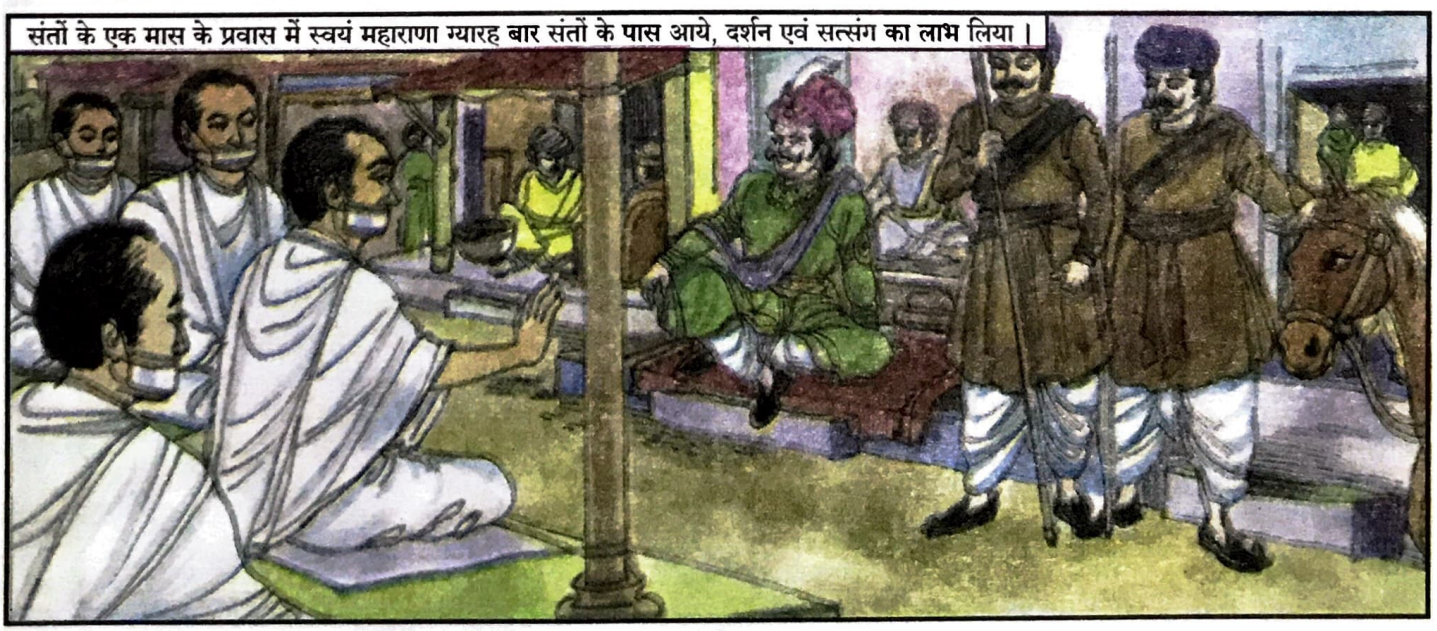

महाराणा को जुलूस बनाकर बाजार से आने-जाने का शौक था । मार्ग में जब संतों का स्थान आता तो हाथी को रुकवा कर वंदन करते, फिर आगे बढ़ा करते थे ।

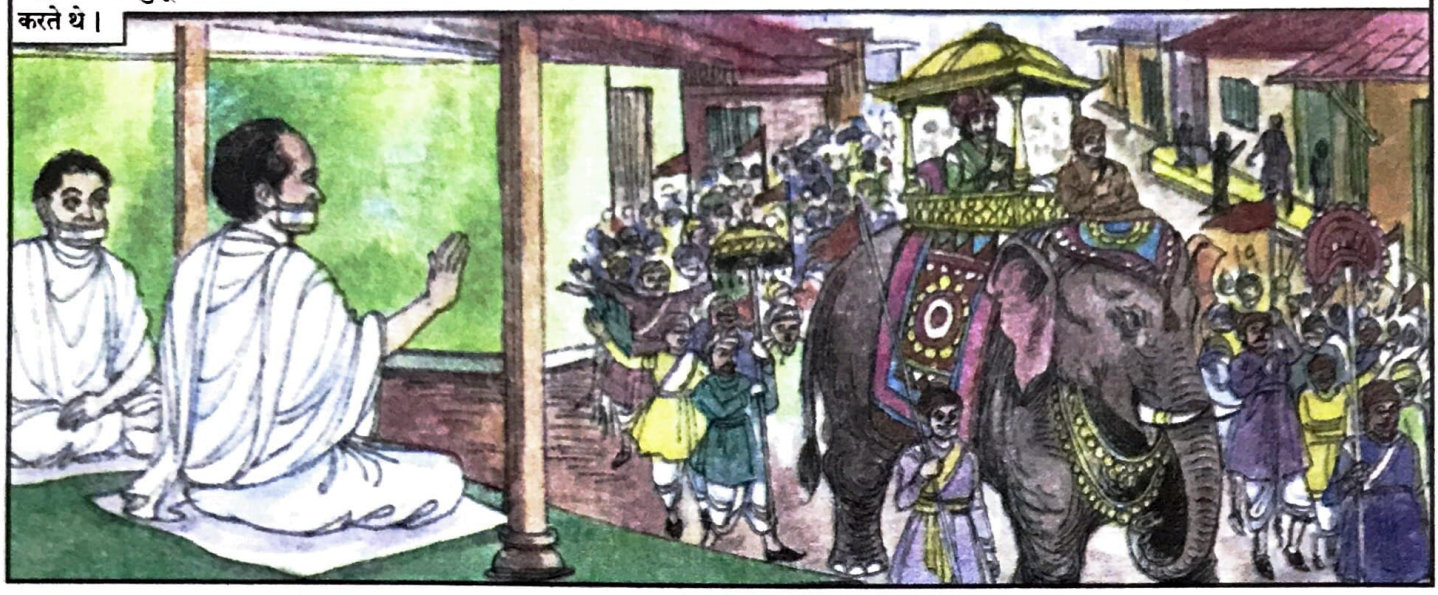

संतों के प्रवचन में बढ रही भारी भीड़ को रोक पाने में असफल विरोधियों ने रात्रि में पत्थर फेंककर बाधाएं उपस्थित करनी शुरू कर दी । अनेक उपायों के बावजूद वह सिलसिला बंद नहीं हुआ । एक दिन महाराणा ने पूछा -

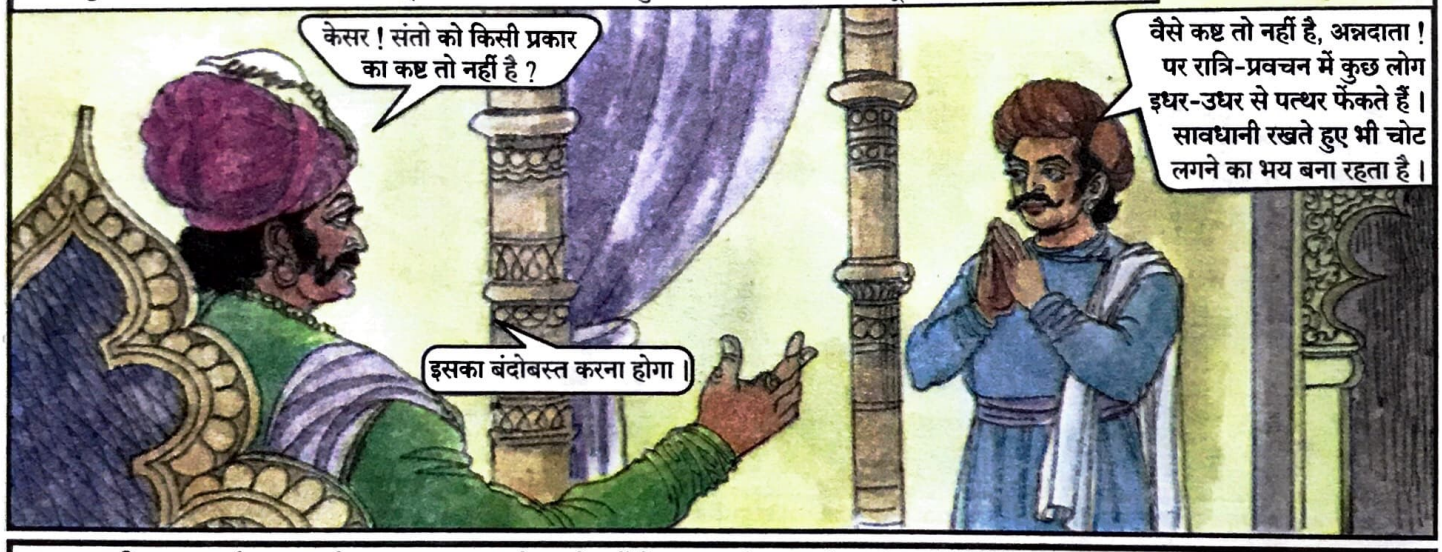

राजा द्वारा नियुक्त आदमी गुप्त रूप से प्रवचन-स्थल पर फैल गये ज्योंही पत्थरबाजी शुरू हुई, उन गुप्त व्यक्तियों ने उनको पकड़ने का प्रयास किया । अन्य तो सब भाग छूटे पर एक लड़के को पकड़ लिया ।

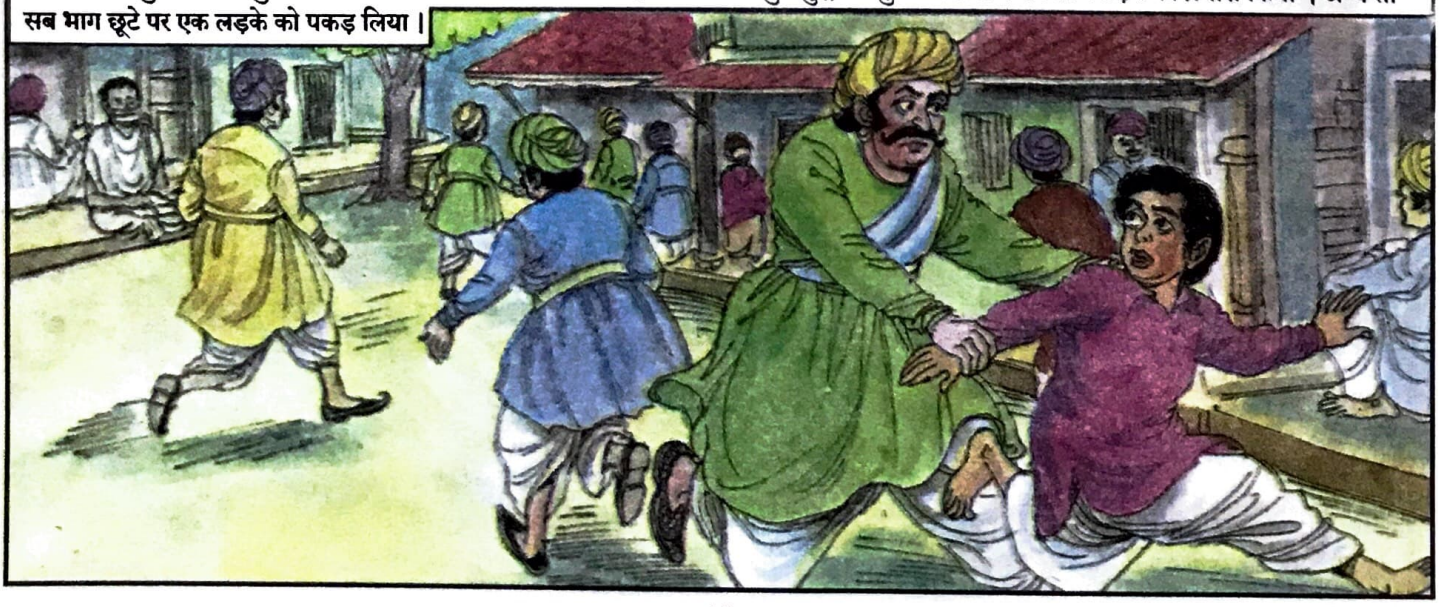

लड़के को दूसरे दिन महाराणा के सम्मुख उपस्थित किया गया। उन्होंने इसे भारी अपराध मानते हुए मृत्यु दंड का आदेश सुना दिया। चारों ओर तहलका सा मच गया। लड़के की मां, पंच व अन्य विशिष्ट जनों ने महाराणा से बालक को छोड़ने की याचना की। महाराणा ने कहा -

मैं यह दंड मेरे लिए नहीं दे रहा। यह संतों का अपराधी है इसलिए भगवान् का अपराधी है। इससे छोटा कोई दंड नहीं है।

सभी निराश होकर चले गये।

केसर जी भंडारी ने जब मुनि हेमराज जी आदि संतों के दर्शन किये तो उन्होंने कहा -

भंडारीजी! संतों को कोई तकलीफ देता है यहां तक पीट भी देता है तो भी हमारे को समत्व रखना है, उसे सहना है। हमारे लिए किसी को मृत्यु दंड देना कदापि उपयुक्त नहीं लगता।

मैं अन्नदाता को निवेदित करूंगा।

संतों की भावना को केसर जी भंडारी ने महाराणा के सामने रखा तो महाराणा ने मुस्कराते हुए कहा -

संत जो कह रहे हैं वह उनकी साधुता के अनुकूल है। हम भी नहीं चाहते किसी को मृत्युदंड देना। हमने तो मात्र भय पैदा करने के लिए किया है, ताकि आगे ऐसी घटनाओं की पुनरावृत्ति न हो। मेरी ओर से संतों को अर्ज करना कि वे इस संदर्भ में निश्चिंत रहें।

दरबार में बालक को बुलाया गया, काफी लोग वहां उपस्थित थे । सबके समक्ष महाराणा ने कहा -

महाराणा की इस धमकी से विरोधी लोगों का उपद्रव शांत हो गया । संतों का यह प्रवास बड़ा महत्वपूर्ण एवं कार्यकारी रहा । इस घटना के बाद तो उदयपुर में विरोध की रीढ ही टूट गई ।

शारीरिक अस्वस्थता और उसके साथ वृद्धावस्था को देख आचार्य श्री ने मुनि रायचंद जी को अपना उत्तराधिकारी घोषित किया । स्वयं संलेखना-तपस्या में संलग्न हो गये । शारीरिक अस्वास्थ के चलते केलवा में नौ महीने का प्रवास हुआ । उदर वेदना बढ़ती रही । एक दिन चतुर्विध संघ की उपस्थिति में उन्होंने अंतिम शिक्षा दी -

केलवा से आचार्य श्री राजनगर पधार गये । वहां एक दिन अचानक मूर्च्छित प्रायः हो गये । संतों ने सागारी अनशन (औषधि-पानी छोड़) कराने हेतु पूछा तो स्वीकृति सूचक सिर हिला दिया, तब फिर उन्हें सागारी अनशन करवा दिया । दूसरे दिन कुछ ठीक हुए । उज्जयिनी चातुर्मास संपन्न कर आई साध्वी अजबू जी द्वारा समर्पित कपड़े व कागज को देख रहे थे । इतने में पुनः मूर्च्छा ने घेरा डाला तब वैरागी भगजी ने कहा -

युवाचार्य रायचंद जी, मुनि खेतसी जी ने अवसर देखकर यावज्जीवन के लिए चौविहार अनशन करवा दिया, पर मूर्च्छा के कारण उनके स्वीकरण का पता नहीं लग सका । संत शरण सूत्र सुनाने लगे । आखिर सं. १८७८ माघ कृष्णा अष्टमी मंगलवार मध्य रात्रि में छह प्रहर के सागारी व तीन प्रहर के चौविहार अनशन में आचार्य श्री भारमल जी का स्वर्गवास हो गया ।

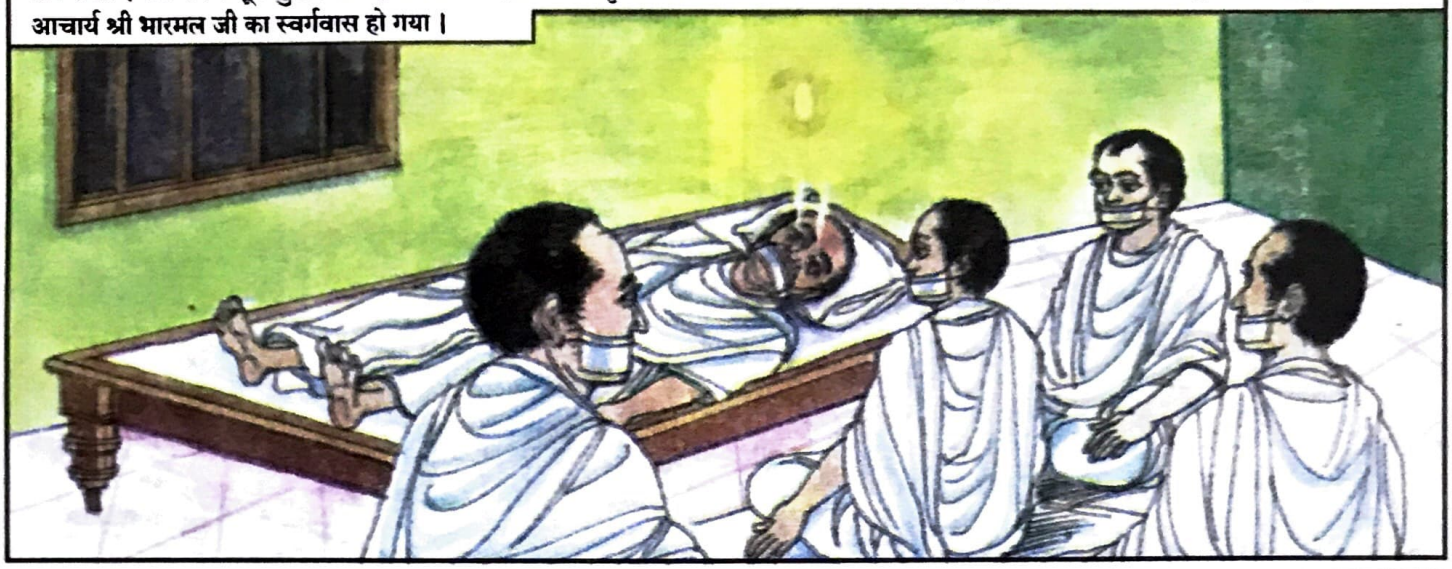

राजनगर में निर्मित बैकुंठी का निचला भाग तथा सिरियारी से बनकर आई इकचालीस गुमटियों वाली बैकुंठी का ऊपरी भाग संयोजित कर उसमें आचार्य श्री के पार्थिव शरीर को रखा । इस अंतिम यात्रा में हजारों मेवाड़ी लोगों का उत्साह अद्वितीय था शोभायात्रा नगर के दरवाजे पर पहुंची, पर बैकुंठी दरवाजे से निकल नहीं सकी क्योंकि बैकुंठी चौड़ी और दरवाजा ऊपर से संकड़ा था । अंततः विचार-विमर्श के बाद दरवाजे के ऊपरी हिस्से को तोड़ दिया, तब जुलूस आगे बढ़ा ।

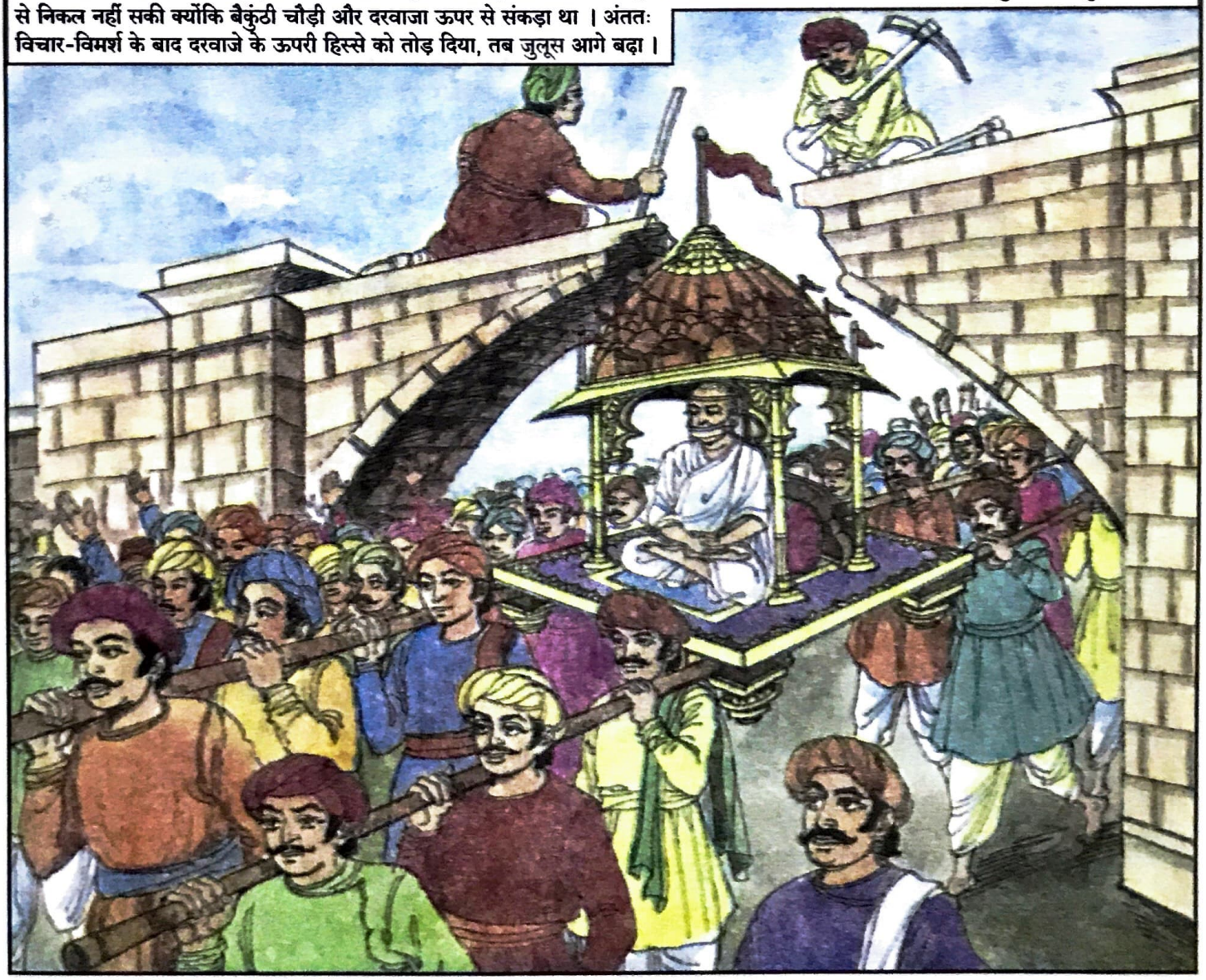

घोइंदा के नाले के किनारे पार्थिव शरीर का दाह संस्कार किया गया । बैकुंठी, चिता व शरीर जल जाने पर भी चादर नहीं जली । इस चमत्कार की बड़ी चर्चा रही ।

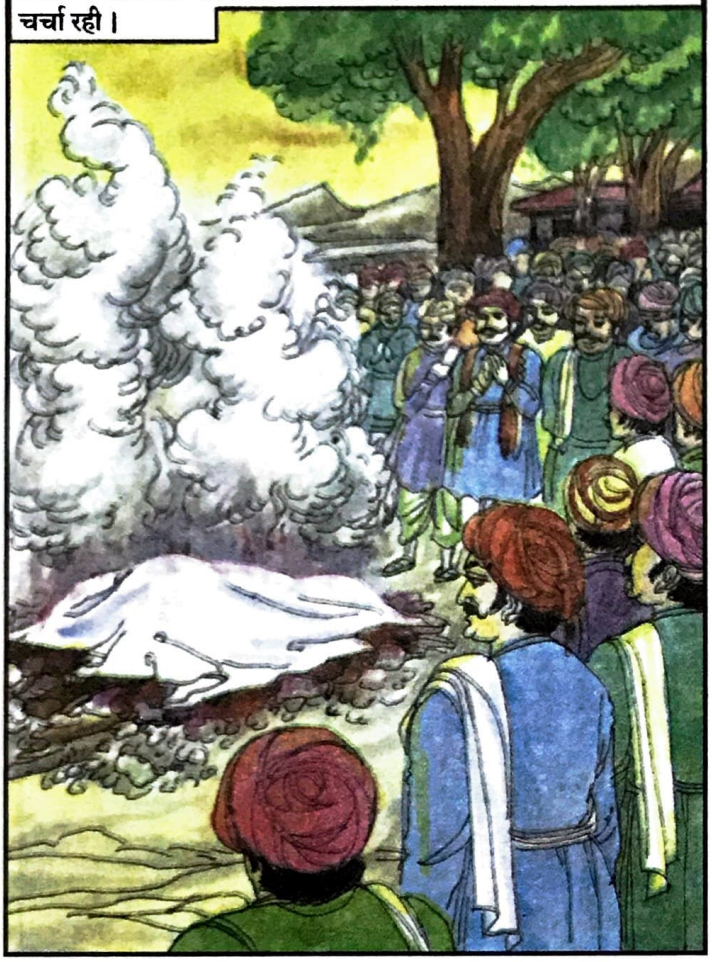

आचार्य श्री भारमल जी के दिवंगत होने की सूचना के साथ दरवाजा फोड़ने के लिए क्षमा याचना एवं पुनः निर्माण की आज्ञा प्राप्त करने हेतु केसर जी भंडारी के माध्यम से समाज ने महाराणा भीमसिंह जी तक बात पहुंचाई तो महाराणा ने कहा -

अंततः व्यय में 'सिरेनाम' महाराणा का रहा । महाराणा व जनता के सम्मिलित व्यय से सारा काम हुआ । दाह-संस्कार में कुल ग्यारह सौ रुपये खर्च हुए ।

जीवन-परिचय

जन्म	- सं. १८०४		बड़ा मूहा
द्रव्य दीक्षा	- सं. १८१३	मार्गशीर्ष कृष्णा एकम	वागोर
भाव दीक्षा	- सं.१८१७	आषाढ़ पूर्णिमा	केलवा
युवाचार्य	- सं. १८३२	मार्गशीर्ष कृष्णा सप्तमी	बींठोड़ा
आचार्य	- सं. १८६०	भाद्रपद शुक्ला त्रयोदशी	सिरियारी
स्वर्गवास	- सं. १८७८	माघ कृष्णा अष्टमी	राजनगर

विहार - क्षेत्र

राजस्थान के तत्कालीन राज्य-मेवाड़, मारवाड़, ढूंढ़ाड़, हाड़ोती

चातुर्मास

द्रव्य दीक्षा के समय तीन, तेरापंथ स्थापना के बाद स्वामी जी के साथ चौवालीस और अठारह आचार्य अवस्था में किए ।

शिष्य परिवार

आचार्य बनने के समय	- साधु -२१, साध्वियां	- २७, कुल - ४८
शासनकाल में दीक्षित	- साधु -३८, साध्वियां	- ४४, कुल - ८२
स्वर्गवास के समय	- साधु -३५, साध्वियां	- ४२, कुल - ७७

प्रणाम

जन्मे थे मेवाड़ धरा पर, बचपन में पाई दीक्षा ।
आर्य भिक्षु के चरण - शरण में, ली अभिनव उत्तम शिक्षा ।।
अनुशासन आचारनिष्ठता, सहज समर्पण था भारी ।
भारीमाल आर्य चरणों का, संघ सकल है आभारी ।।

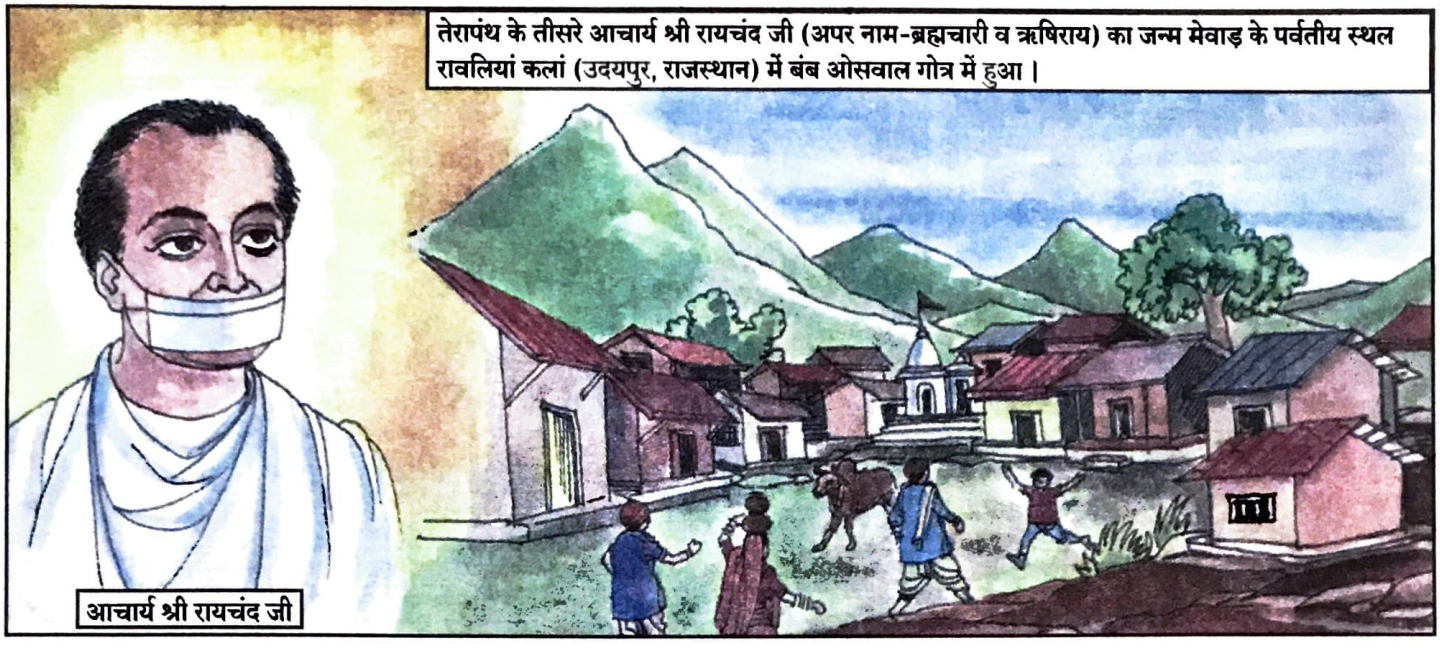
तेरापंथ के तीसरे आचार्य श्री रायचंद जी (अपर नाम-ब्रह्मचारी व ऋषिराय) का जन्म मेवाड़ के पर्वतीय स्थल रावलियां कलां (उदयपुर, राजस्थान) में बंब ओसवाल गोत्र में हुआ।
आचार्य श्री रायचंद जी

पिता चतरो जी एवं माता कुसालां जी की गोद में बड़े होने लगे। रायचंद जी तीन भाइयों में सबसे छोटे थे। उनके एक छोटी बहिन भी थी। उनका भरापूरा व संपन्न परिवार था।

रायचंदजी पहाड़ी भूमि पर साथी बालकों के साथ बाल सुलभ क्रीड़ा करते हुए

अपने साले मुनि खेतसी जी की प्रेरणा से चतरो जी ने स्वामी जी की श्रद्धा स्वीकार की, उनके परिवार में धर्म के संस्कार परिपक्व बने। एक बार साध्वी बरजू जी रावलियां गई। उनके प्रवास में बालक रायचंद जी एवं माता कुसालां जी को वैराग्य उत्पन्न हुआ।

स्वामी जी उसी दौरान रावलियां पधारे। शाह चतरो जी ने प्रारंभिक आनाकानी के बाद आज्ञा दे दी। बहुत उत्साह एवं ठाठवाट के साथ दीक्षा-उत्सव मनाया। वैरागी रायचंद जी को हथिनी पर बैठाकर शोभा यात्रा निकाली। उस समय वे दस वर्ष के थे।

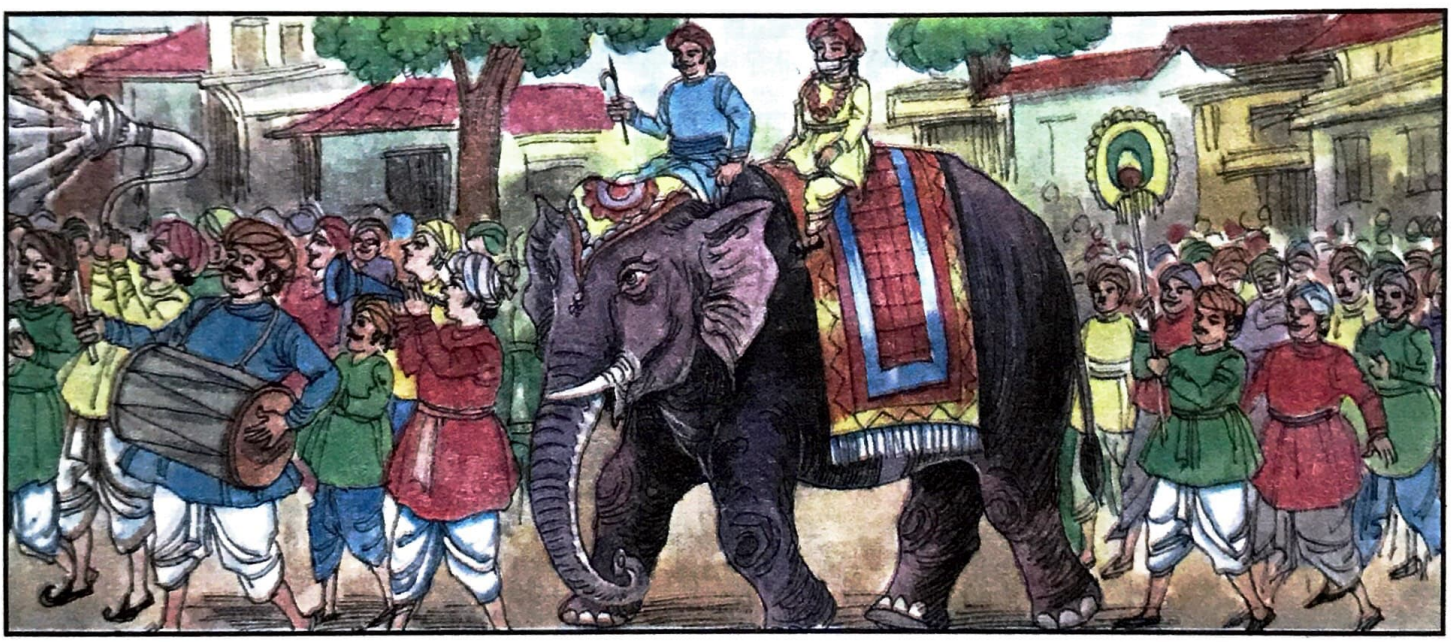

चैत्र पूर्णिमा सं. १८५७ रावलियां कलां के बाहर आम्रवृक्ष के नीचे स्वामी जी ने बालक रायचंद जी व उनकी माता कुशालां जी को दीक्षा प्रदान की। आज भी वह वृक्ष उस दृश्य की याद दिलाता है। दो सौ वर्षों का होने पर भी फल देता है। मुनि रायचंद जी जैसे पुण्यशाली का पगफेरा धर्मसंघ में चहुंमुखी प्रगति का कारण बना। ऋषिराय की दीक्षा के बाद स्वामी जी अढ़ाई वर्ष विद्यमान रहे। उस अवधि में आठ साधुओं व बारह साध्वियों की दीक्षाएं हुई।

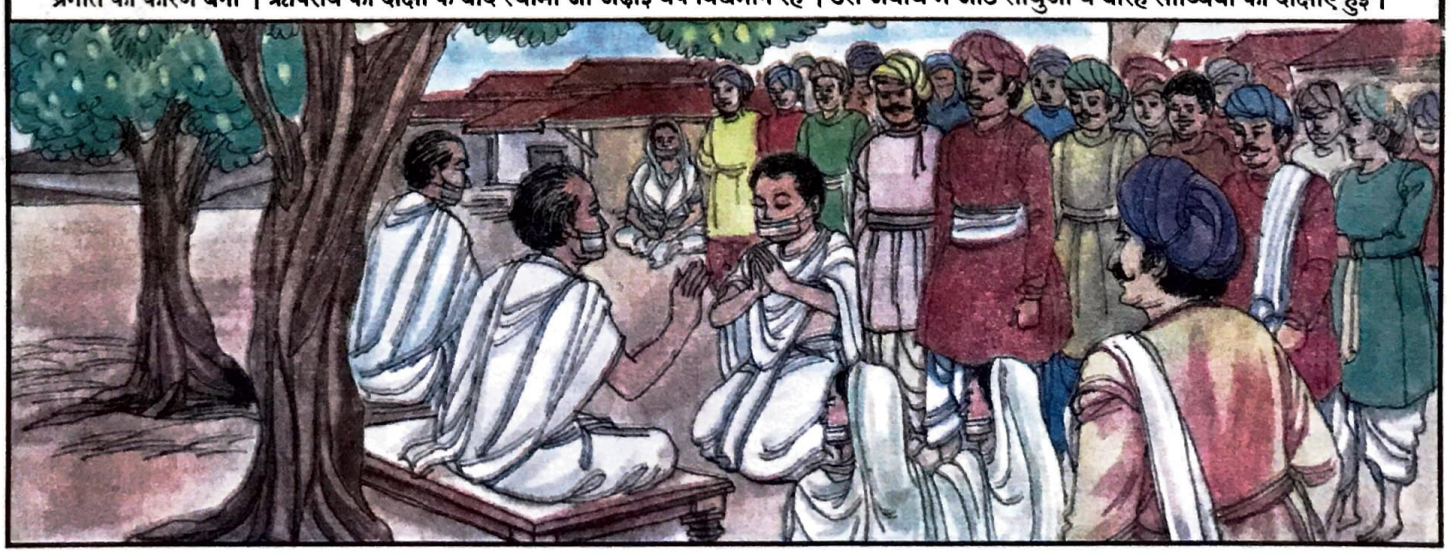

बाल मुनि रायचंद जी की बुद्धि बहुत कुशाग्र, उपयोग निर्मल, आचार-विचार में जागरूक एवं विनयी थे । स्वामी जी ने उनकी विशेषताओं को गौर से देखा, तभी एक बार उन्होंने कहा -

रायचंद तो भारमल का भार संभालने योग्य है ।

स्वामी जी को रायचंद जी पर बहुत विश्वास था । वे उनकी बात का आदर करते थे । स्वामी जी के अंतिम दिनों में रायचंद जी ने पास आकर कहा -

गुरुदेव ! अब तो आपके शरीर का पराक्रम क्षीण पड़ रहा है ।

स्वामी जी ने तत्काल भारमल जी, खेतसी जी को बुलाया और कहा -

यह ब्रह्मचारी कह रहा है कि आपके शरीर का पराक्रम क्षीण पड़ रहा है । अब मुझे संथारा करना है ।

और इसी के साथ स्वामी जी ने संथारा स्वीकार कर लिया ।

उन्हीं दिनों मुनि रायचंद जी को शिक्षा प्रदान करते हुए स्वामी जी ने कहा -

तुम बुद्धिमान हो, अपने आचार और व्यवहार में पूर्ण सजग रहना, मेरे प्रति किसी प्रकार का मोह मत करना ।

गुरुदेव ! आप आत्म-कल्याण कर रहे हैं ! मनुष्य जन्म को सफल बनाते हुए आप उत्तम गति को प्राप्त करोगे, ऐसी स्थिति में मैं मोह क्यों करुंगा ?

मुनि रायचंद जी के परिवार में मामा मुनि खेतसी स्वामी, माता साध्वी कुशालांजी, मौसी साध्वी रूपां जी थी । रूपां जी की दीक्षा लेने की भावना हुई । परिवार वालों को जब दीक्षा के विचार का पता चला तो सबने मुखर विरोध किया । इस पर भी उनकी भावना नहीं बदली तो उन्हें रावलियां के रावले में 'खोड़े' में पैर डालकर बंद कर दिया ।

इसी के साथ शुरू हुई रूपां जी की तपस्या एवं 'ॐ भिक्षु' का सतत् जप । तप और जप ने अपना रंग दिखाया और २१ वें दिन खोड़ा टूट गया । अधिकारी एवं पारिवारिक जन आश्चर्य के साथ घबरा भी गये । उन्हें सहर्ष दीक्षा की अनुमति मिल गई । स्वामी जी के पास उन्होंने संयम-रत्न प्राप्त किया ।

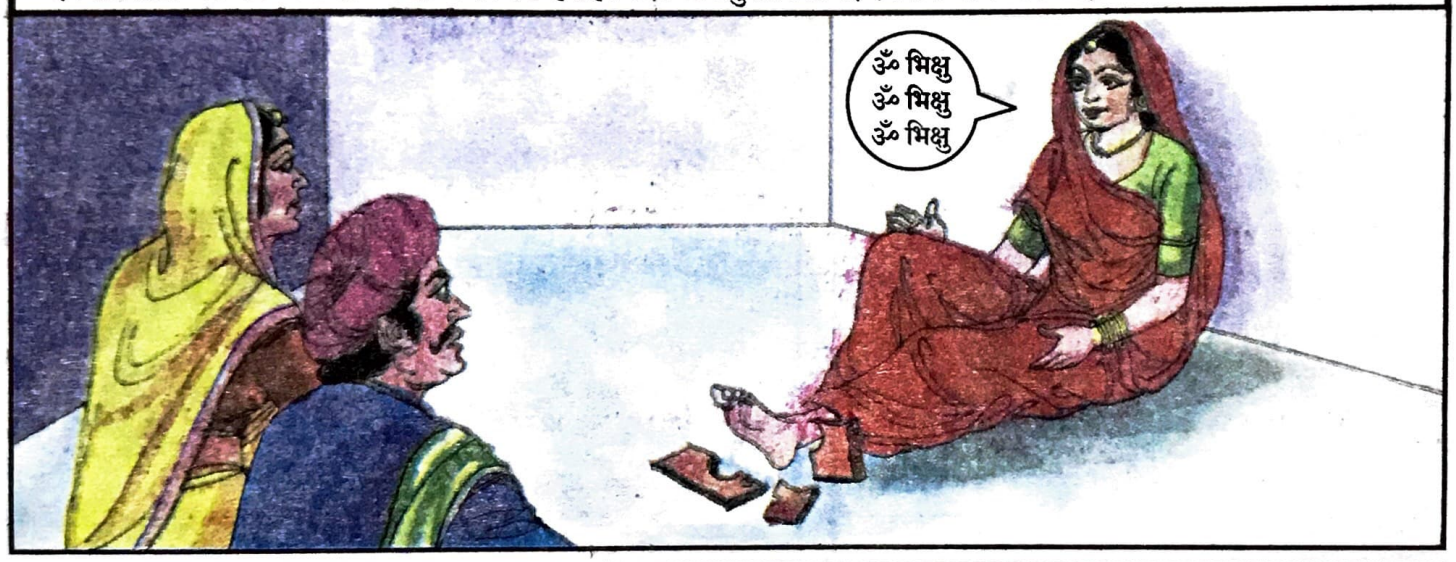

एक बार आचार्य भारमल जी ईडवा विराज रहे थे । उस समय रात्रि में मुनि रायचंद जी ने विस्मृतिवश कुछ पद्य आगे-पीछे बोल दिये । आचार्य श्री ने अंदर कमरे से आवाज दी -

व्याख्यान समाप्त किया । अंदर आकर आचार्य श्री से निवेदन किया -

गुरुदेव ! व्याख्यान के बीच न फरमाकर यहां आने पर मुझे फरमा देते तो ठीक रहता ।

आचार्य श्री ने मुनि खेतसी जी को बुलाकर कहा -

खेतसी जी ! तुम्हारा भानजा कहता है कि मुझे सबके बीच न कहकर अकेले में कहें । क्यों कहें अकेले को ? अब तो और भी जरूरी हो गया है कि हम सबके सामने ही कहें ।

गुरुदेव ! जैसी आपकी मर्जी हो वैसा ही करें । मैंने उपरोक्त प्रार्थना कर गलती की । इसके लिए आप मुझे क्षमा करें ।

आप गुरु हैं । आप जैसा चाहें वैसा करें । आप इसके हित के लिए ही कहते हैं ।

आचार्य श्री भारमल जी ने रायचंद जी को अपनी अंतिम अवस्था में युवाचार्य पद प्रदान किया, पर उनके उत्तराधिकारी होने का समय-समय पर संकेत देते रहे थे । सं. १८६९ के जयपुर प्रवास में बालक जीतमल जी की दीक्षा होने वाली थी । ठीक समय पर आचार्य श्री ने स्वयं जाने का इन्कार कर रायचंदजी से कहा -

मेरे पीछे तो भार संभालने वाला तू है । तुझे भी तो अपने उत्तराधिकारी की आवश्यकता होगी, अतः तुम ही जाओ ।

आचार्य श्री ने उस समय अपने युवाचार्य के रूप में रायचंद जी को स्पष्ट संकेत दे दिया, साथ ही उनके उत्तराधिकारी का भी दे दिया ।

आचार्य श्री भारमल जी ने युवाचार्य पद पर नियुक्ति करने का निश्चय कर नियुक्ति पत्र जीत मुनि से लिखवाया । उसकी छठी पंक्ति में लिखवाया - 'सर्व साध साध्वी खेतसी जी, रायचंद जी री आगन्या (आज्ञा) मांहे चालणो । मुनि जीतमल जी ने दो नाम लिख तो दिए, पर तत्काल उन्होंने निवेदन किया -

आचार्य श्री ने मुनि जीत के सुझाव को उपयुक्त मानकर प्रथम नाम हटाकर रायचंद जी को अपना उत्तराधिकारी घोषित कर दिया ।

युवावस्था में रायचंद जी को युवाचार्य बनाने से लोगों में कुछ ऊहापोह हुआ । उनकी धारणा थी कि मुनि हेमराज जी या खेतसी जी को बनाया जायेगा । ऐसे ही आमेट के एक श्रावक ने व्यंग्य में मुनि श्री खेतसी जी से कहा -

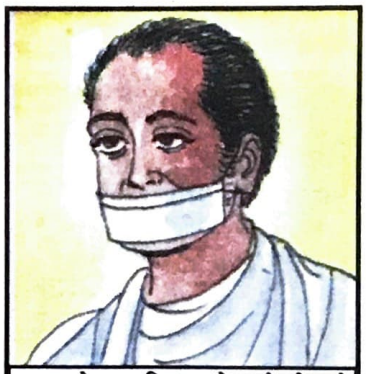

आचार्य श्री भारमल जी के स्वर्गवास के बाद माघ कृष्णा नवमी को आचार्य पद की 'पछेवड़ी' धारण कराने का निश्चय किया गया। नवमी को ज्योतिषी निषिद्ध तिथि मानते हैं, अतः वह शुभ कार्य के लिए वर्जित तिथि है। मेवाड़ी भाषा में निषेध को 'नखेद' बोलते हैं। एक जानकार भाई ने कहा -

आचार्य श्री की प्रेरणा से मुनि पीथल जी, हीर जी एवं वर्धमान जी ने एक साथ 'आछ' (छाछ गर्म के बाद उस पर नितरा पानी) व पानी के आगार से छहमासी तप स्वीकार किया। आचार्य श्री ने चातुर्मास समाप्ति के बाद उदयपुर से विहार कर कांकरोली पधारे।

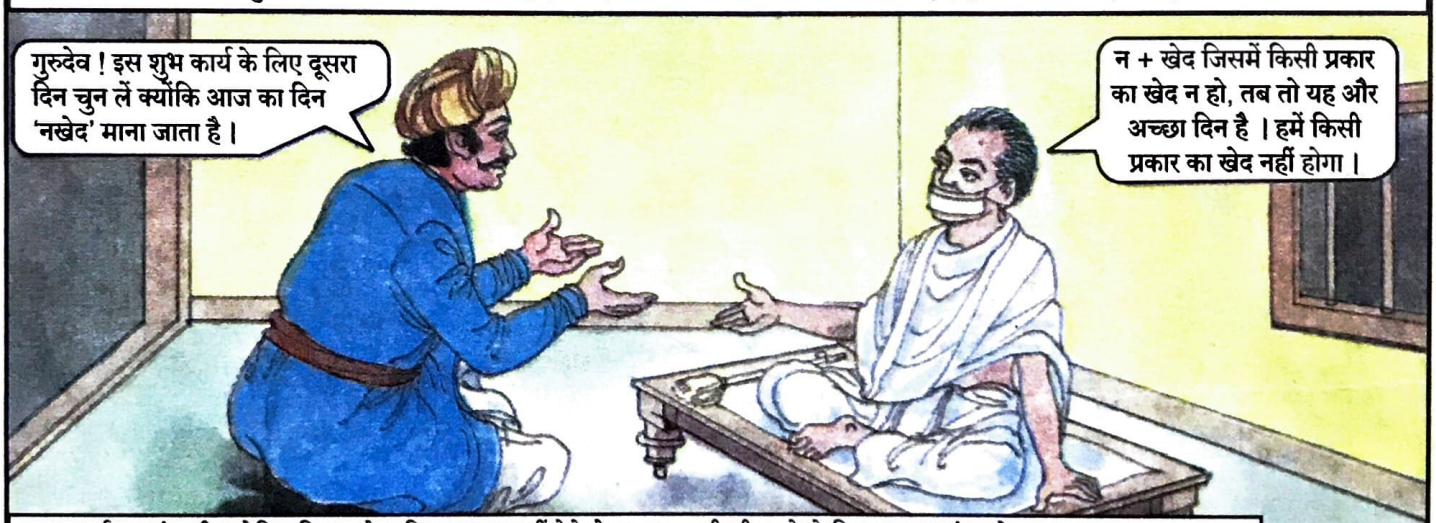

एक बार ऋषिराय मेवाड़ में विहार कर रहे थे । कुछ साधु उनसे काफी आगे चल रहे थे । उन दिनों वहां डाकुओं, लुटेरों का बहुत भय रहा करता था । गांवों के ठाकुर लोग भी डाका डाला करते थे । आगे वाले साधुओं को कुछ घुड़सवार मिले और उन्होंने संतों से सारा सामान सौंप देने को कहा तो संत बोले -

कंबल को मुनि ने तत्काल जमीन पर बिछाया और उस पर बैठ गये । घुड़सवार कंबल को उनके नीचे से खींचने का प्रयत्न करने लगा ।

पीछे से ऋषिराय ने यह सारा दृश्य देखा तो समझ गये कि ये डाकू हैं । उन्होंने दूर से ऊंचे स्वर में कहा -

कुछ ही क्षणों में ऋषिराय, ठाकुर सभी वहां आ गये, कंबल खींचने वाला सहम गया । ठाकुर साहब ने पूछा -

ठाकुर व उसके साथी लज्जावनत हो गये ।

ठाकुर ने कहा -

महाराज ! पीछे से हमारे और साथी आ रहे हैं वे फिर आपको कष्ट न दे इसलिए हमारे दो साथी आपको गांव तक पहुंचा आयेंगे ।

एक बार ऋषिराय बोरावड़ पधारे । वहां के ठाकुर केसरीसिंह जी उनके भक्त थे । कुचामन ठाकुर से उनकी अनबन हो गई । उन लोगों ने बोरावड़ पर आक्रमण कर दिया । ठाकुर सुसज्ज होकर रणक्षेत्र में जाने के लिए रवाना हुए । मार्ग में स्थान पर ऋषिराय के दर्शन किये तो उन्होंने रणसज्जा की तैयारी का कारण पूछा तो उन्होंने कारण बताते हुए कहा -

यदि जीवित रहे तो फिर दर्शन करेंगे ।

भगवान् ने जैसा देखा है वास्तव में वही होता है परन्तु व्यवहार में यही कहा जाता है कि सत्य की सदा विजय होती है ।

अब मुझे विजय में कोई संशय नहीं है ।

थोड़े ही समय में प्रतिपक्षी सेनापति बोरावड़ ठाकुर की गोली से मारा गया ।

शेष सेना भाग खड़ी हुई ।

विजय का डंका बजाते हुए वापस आये और सेना सहित ऋषिराय के दर्शन कर ठाकुर केसरीसिंह जी बोले -

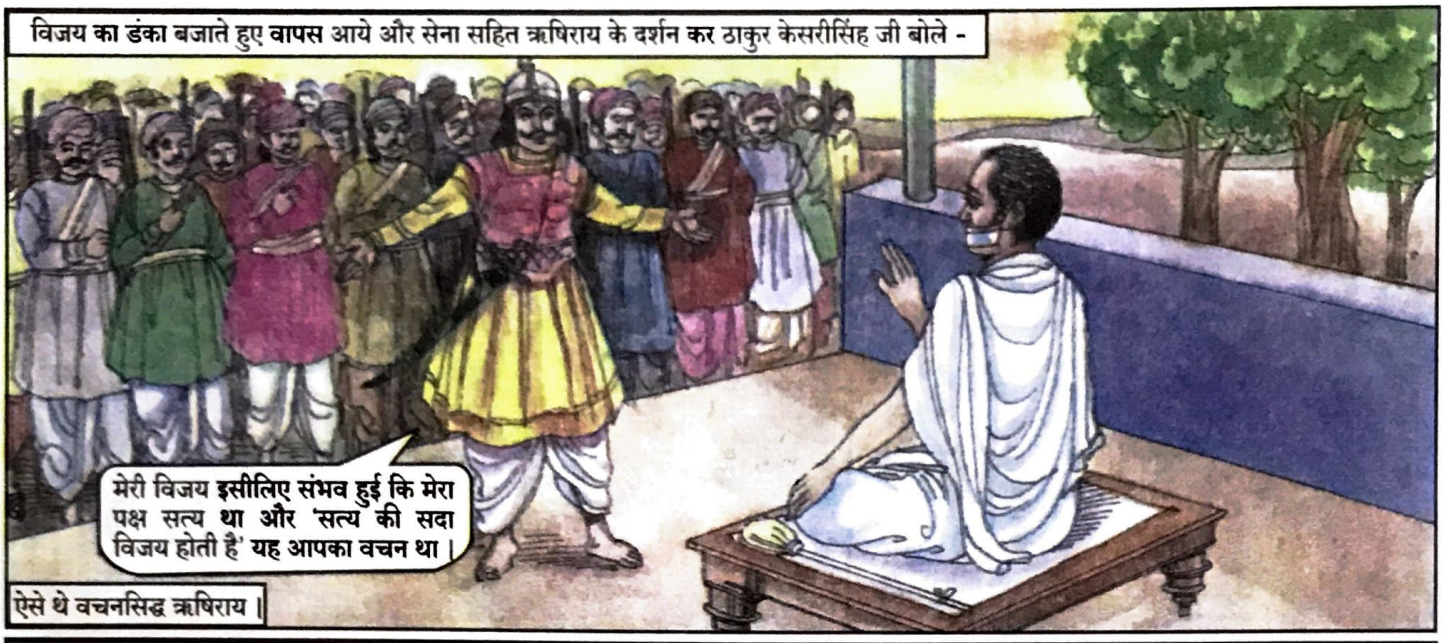

ऐसे थे वचनसिद्ध ऋषिराय।

मांढा गांव, शाम का समय, ऋषिराय आहार से निवृत्त हो चुके थे। संत आहार कर रहे थे। गहरे बादल व मकान में सघन वृक्ष होने से अंधेरा गहराने लगा। उन्हें सूर्यास्त होने की आशंका हो गई। वे ऊंची दीवार पर चढ़कर देखने लगे। पड़ौस के नवलमल जी बोहरा ने यह देख आश्चर्य से पूछा -

ऋषिराय की इस सहज जागरूकता ने नवलमल जी पर ऐसा प्रभाव डाला कि वे परिवार सहित उनके श्रद्धालु बन गये।

ऋषिराय ने भावी आचार्य के रूप में जीतमल जी की नियुक्ति का पत्र आषाढ़ शुक्ल सं. १८९४ में लिखा, जिसे उनके ज्येष्ठ भ्राता मुनि स्वरूपचंद जी को सौंप दिया । चातुर्मास के बाद नाथद्वारा में मुनि जीतमल जी को विधिवत् युवाचार्य घोषित किया गया ।

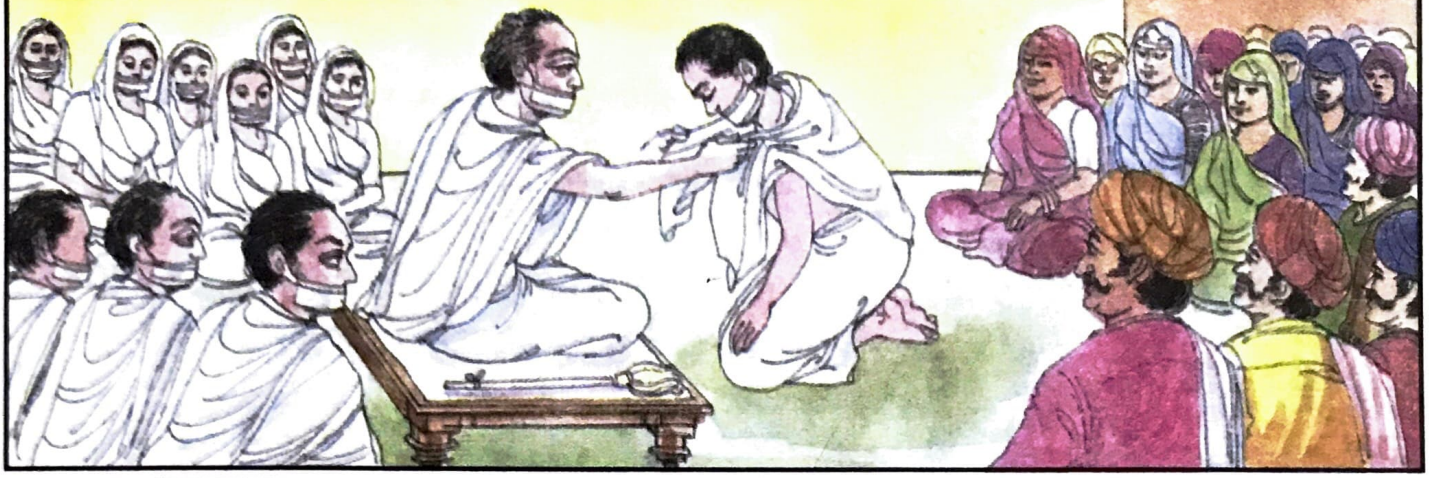

ऋषिराय ने अपने जीवन में कई यात्राएं की । मालव यात्रा में जब झाबुआ पधारे तब वहां के राजा एवं राजकुमार पूरे लवाजमे के साथ दर्शन करने आए ।

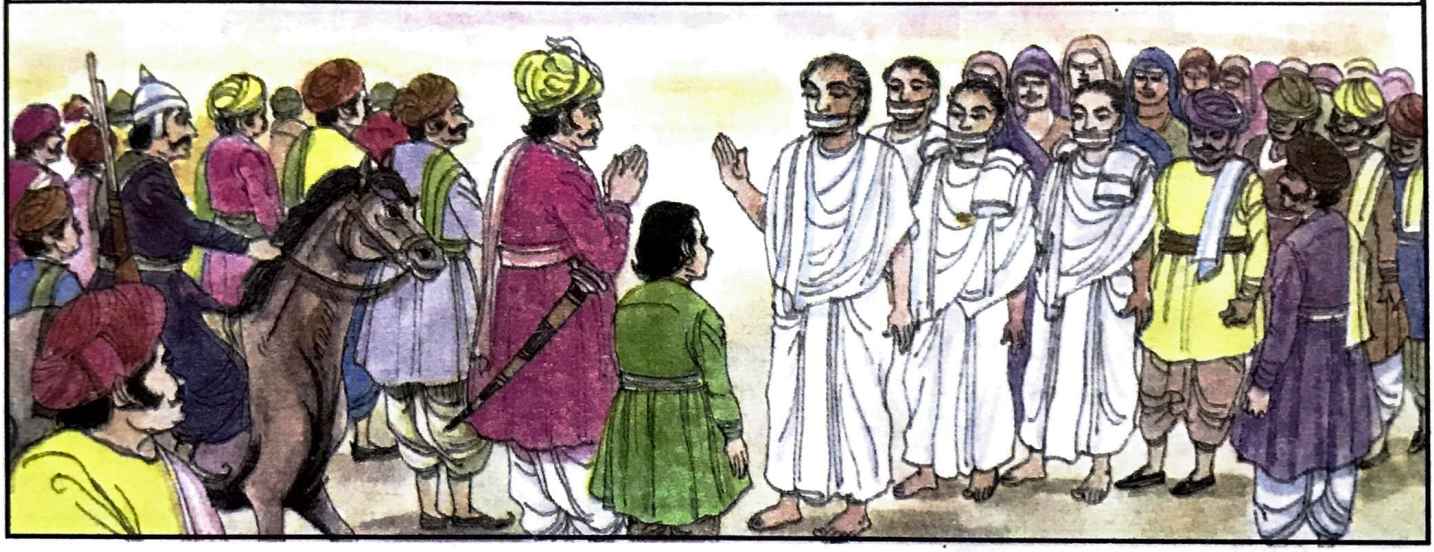

ऋषिराय के प्रवचन में राजा एवं राजकुमार श्रद्धालु श्रावक की तरह वहां प्रवचन सुनते ।

ऋषिराय का सं. १८८६ का चातुर्मास पाली था । थली के लोग यदा-कदा पाली आते थे । बीदासर के कई लोगों ने ऋषिराय से संपर्क किया । बीदासर जाकर उनके आचार व्यवहार की बातें बताई । यतियों के हीनाचार से ऊबे वहां के लोगों ने ऋषिराय के दर्शन करने एवं थली में पधारने की अर्ज करने का निश्चय किया । चार बैंगाणी बंधु-शोभाचंदजी, उत्तमचंदजी, पृथ्वीराज जी एवं पंचाणदास जी ऊंटों पर सफर कर पाली पहुंचे ।

चारों ने ऋषिराय के दर्शन किये, वार्तालाप किया, थली में पधारने की विनती की । श्रावकों से सारी स्थिति जानकर ऋषिराय ने चातुर्मास के बाद थली में आने का आश्वासन भी दे दिया । बीदासर के श्रावक अत्यन्त प्रसन्न होकर लौटे ।

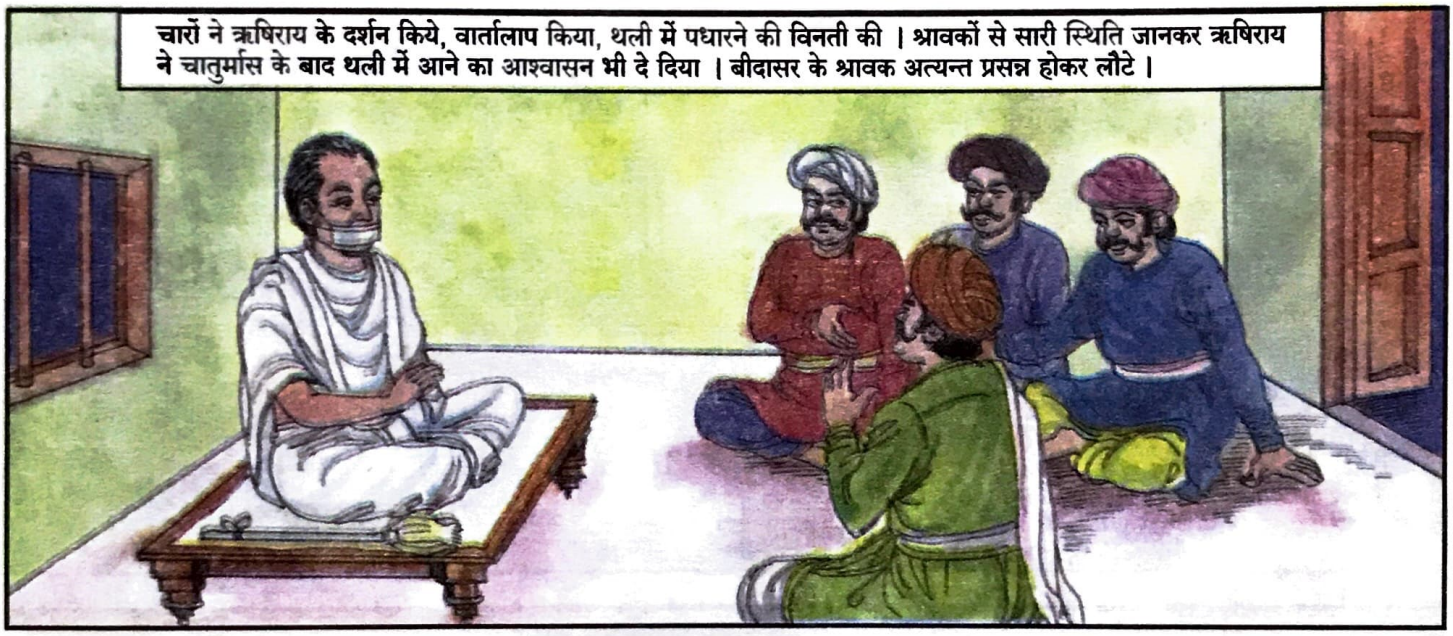

चातुर्मास समाप्ति के करीब दो माह बाद मुनि इसर जी के द्वारा थली का सर्वेक्षण प्रतिवेदन प्राप्त हो जाने पर ऋषिराय ने थली में प्रवेश किया । लाडनूं, सुजानगढ़, रतनगढ़, चूरू तक पधार कर १८८७ का चातुर्मास बीदासर में किया ।

मालव एवं थली के बाद तीसरी यात्रा सं. १८८९ के उदयपुर चातुर्मास के बाद हुई जो सर्वाधिक लंबी थी । ऋषिराय मुनि जीतमल जी आदि सत्रह संतों के साथ उदयपुर से इडर होते हुए प्रथम-चरण में गुजरात में प्रवेश किया । अहमदाबाद शहर में पधारे ।

अहमदाबाद से साणंद होते हुए दूसरे-चरण में सौराष्ट्र (काठीयावाड़) पधारे । लींबडी होते हुए वढ़वाण पधारे । वहां दरियापुरी संप्रदाय के शंकर ऋषि मिले । उन्होंने वहां कुछ दिन रुकने का आग्रह किया पर समय की स्वल्पता के कारण रुक नहीं पाये ।

तीसरे-चरण में सौराष्ट्र से रण को पार करते हुए कच्छ पधारे । फिर पुनः रण पार करते हुए मारवाड़ पाली पधारे । वहीं उन्होंने चातुर्मास किया ।

लोगों के आग्रह को देखकर वीरमगाम (सौराष्ट्र) में मुनि इसरजी, वेला (कच्छ) में मुनि कर्मचंद जी का चातुर्मास करवाया ।

कहा जाता है कि मध्याह्न में ऋषिराय जब कभी विहार करते तो प्रायः आकाश में बादल छा जाते थे। आस-पास गांवों के लोग यह अनुमान लगाते -

बासठ वर्ष की आयु में छोटी रावलियां में श्वास की मामूली बीमारी में संतों के हाथों में स्वर्गस्थ हो गये। उस समय एक मुहूर्त्त रात्रि बीती थी।

दूसरे दिन हजारों लोगों की उपस्थिति में उनके पार्थिव शरीर का दाह-संस्कार हुआ

जीवन परिचय

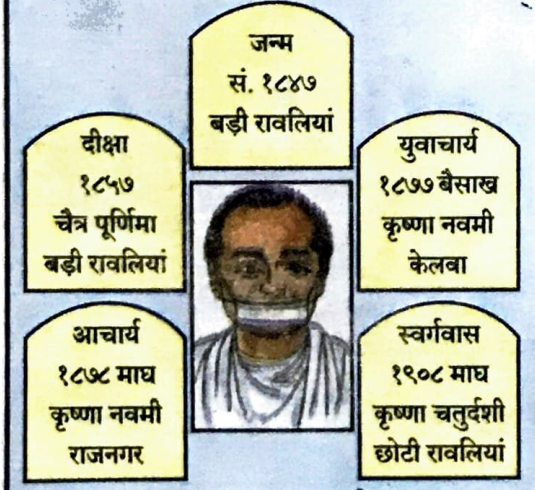

कुल आयु - ६२ वर्ष

विहार क्षेत्र

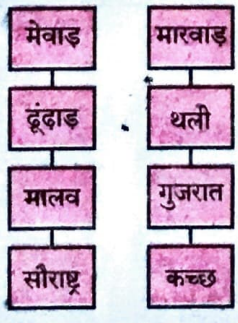

चातुर्मास

स्वामी जी के साथ	३
आचार्य भारमल जी के साथ	१८
आचार्य पद पर	३०

शिष्य परिवार

	साधु	साध्वी	कुल
आचार्य बनने के समय	३४	४२	७७
शासनकाल में दीक्षित	७७	१६८	२५५
स्वर्गवास के समय	६७	१४३	२१०

प्रणाम

सदा सरल ऋषिराय गणीश्वर, छलना उनको छल न सकी।
निरभिमानता स्पष्टवादिता की गति कब ही रुक न सकी॥
इस शासन का उत्कर्ष आपके जीवन में प्रारंभ हुआ।
खुल गए अनेकों क्षेत्र नये, शासन का नव विस्तार हुआ॥
तुमको पा धन्य हुआ शासन, शासन से तुम भी धन्य हुए।
यहां अनेकों की नैया को पार लगा कृतपुण्य हुए॥

मुनि श्री सुमेरमल जी (लाडनूं)

जन्म - चैत्र शुक्ला 14, सं. 1989, लाडनूं (राज.),
दीक्षा - माघ शुक्ला 7, सं 1998, सरदारशहर (राज.)
आचार्य श्री तुलसी द्वारा
अग्रगण्य - ज्येष्ठ कृष्णा 3 सं. 2010, भीनासर (राज.)
सम्बोधन - तेरापंथ दर्शन मनीषी - माघ शुक्ला ६ सं. 2060, जलगांव (महाराष्ट्र)
विशेष : तीन मुमुक्षुओं को गुरु - निर्देश से दीक्षा प्रदान

मुनि श्री द्वारा लिखित चित्रकथा माला

अखूट खजाना

जैन धर्म में सामायिक एवं संत दर्शन का बहुत महत्वपूर्ण स्थान है । इसके महत्व को प्रतिपादित करने वाले दो कथानक इस चित्रकथा में लिये गये हैं ।

क्रान्तिकारी आचार्य भिक्षु - भाग-1

तेरापंथ के प्रवर्तक, महान् संत, शिथिलाचार के विरुद्ध शंखनाद फूंकने वाले आचार्य भिक्षु के जन्म, स्थानकवासी परंपरा में दीक्षा व अभिनिष्क्रमण का चित्रण है ।

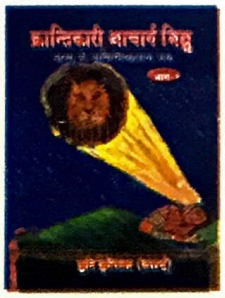

क्रान्तिकारी आचार्य भिक्षु - भाग-2

अभिनिष्क्रमण के बाद विरोध का स्वर बुलंद हुआ, केलवा की अंधेरी ओरी में तेरापंथ की विधिवत् स्थापना हुई । आहार पानी व स्थान की समस्या सामने आई, इन स्थितियों का सजीव निदर्शन है ।

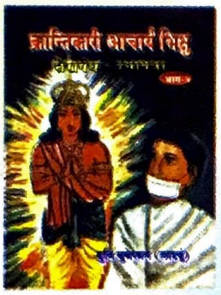

क्रान्तिकारी आचार्य भिक्षु - भाग-3

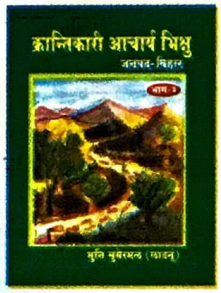

आचार-संहिता का कड़ाई से पालन, सिद्धान्त प्रतिपादन की कुशलता, असंकीर्णता, न्यायप्रियता, संघर्ष में भी शीतलता एवं संतुलन, प्रत्युत्पन्न मति, विनोद प्रियता जैसी विशेषताओं को प्रकट करते आचार्य भिक्षु के जीवन संस्मरणों का गुंफन है।

क्रान्तिकारी आचार्य भिक्षु - भाग-4

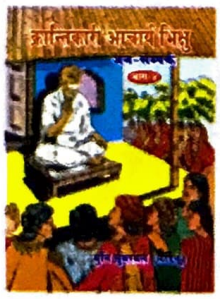

आचार्य भिक्षु हर बात को कथानाक व दृष्टांत के माध्यम से हरेक के गले उतार देते थे । उनका जनसंपर्क व्यापक था । ठाकुर (जागीरदार) से लेकर ठेट किसान तक उनसे प्रभावित थे । प्रस्तुत भाग में उनके जनसंपर्क की एक झलक प्रदर्शित की गई है ।

क्रान्तिकारी आचार्य भिक्षु - भाग-5

आचार्य भिक्षु आकर्षक व्यक्तित्व के धनी थे । उनके पास जो कोई भी आता वह प्रभावित हुए बिना नहीं रहता । विरोधी लोग भी उनकी विद्वता, साधनाशीलता कुशल वक्तृत्व एवं कष्ट सहिष्णुता का लोहा मानते थे । इन सबकी झलक इस भाग में है ।

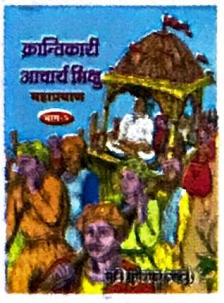

क्रान्तिकारी आचार्य भिक्षु - भाग-6

तेरापंथ के दूसरे आचार्य श्री भारमल जी आचार्य श्री भिक्षु के सर्वात्मना समर्पित थे । तीसरे आचार्य श्री रायचन्द जी बड़े पुण्यवान आचार्य थे ।
दोनों स्वामीजी के हाथों दीक्षित हुए । प्रस्तुत चित्र कथा में दोनों के जीवन की संक्षिप्त झलक प्रस्तुत है ।

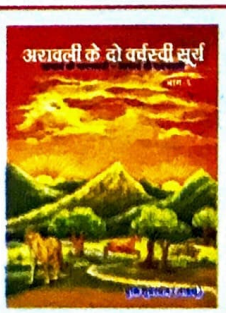

मुनि श्री की अन्य कथा पुस्तकें ।

1. परीलोक
2. बुद्धिलोक
3. नीतिलोक
4. प्रज्ञालोक
5. सत्यलोक
6. दिव्यलोक
7. नारीलोक
8. कर्मलोक
9. उपकार
10. संस्कार
11. सप्त व्यसन
12. विद्याधर श्रीपाल
13. जादूगर श्रीकांत
14. नैतिक कहानियां भाग-1
15. नैतिक कहानियां भाग - 2 आदि - आदि ।

आशीर्वचन

चित्रकथा साहित्य की आकर्षक विधा है। यह आबालवृद्ध सबके मन को भाती है। भावी पीढ़ी के लिए तो यह संस्कार-निर्माण की कुन्जी बन सकती है। चित्रकथाएं बहुत लिखी जाती हैं, पर जो सुरुचिपूर्ण, संस्कार निर्मात्री और संघीय निष्ठा जगाने वाली चित्रकथा हो, उसका महत्त्व ही अलग है, "क्रान्तिकारी आचार्य भिक्षु" चित्रकथा हमारे संघीय इतिहास को उजागर करती है। संस्कार-निर्माण की दृष्टि से भी उसकी उपयोगिता असंदिग्ध है। "अरावली के दो वर्चस्वी सूर्य" उसी श्रृंखला की अगली कड़ी है। प्रस्तुत चित्रकथा में आचार्य श्री भारमल जी और आचार्य श्री रायचन्द जी के जीवन प्रसंग गुम्फित हैं। ये जीवन प्रसंग पाठकों के लिये बोधपाठ का काम करेंगे, ऐसी आशा की जा सकती है।

मुनि सुमेर (लाडनूं) इतिहास वेत्ता तो है ही, वह आज की भाषा में आज के तरीके से इतिहास लेखन के मर्म को भी पहचानता है। उसकी संघनिष्ठा और समाज में संघीय संस्कार भरने का कौशल बेजोड़ है। कलकत्ता महानगर का पंचवर्षीय प्रवास इसका साक्षी है। अहमदाबाद में भी वह सुनियोजित रूप में सतत काम कर रहा है। अन्यान्य कार्यों के साथ संघ के लिये उपयोगी साहित्य चित्रकथा के निर्माण का सिलसिला सिद्ध करता है कि वह समय-नियोजन की कला में भी निष्णात है।

विशेष उद्देश्य के साथ लिखी गई ये चित्रकथाएं पाठकों के आकर्षण को बनाये रखती हुई बच्चों के संस्कार निर्माण में उपयोगी बने, यही मंगल भावना है।

२४ जनवरी, १९९७

गणाधिपति तुलसी

आचार्य महाप्रज्ञ